भूमिका

दोहा छोटा छन्द है परन्तु उसमें बहुत से भावों का समावेश बड़ी खूबी के साथ हो जाता है। बिहारी के दोहे इसके उदाहरण हैं। सांसारिक और पारमार्थिक विषयों की महत्व पूर्ण शिक्षाऐं भी सन्त कवियों ने इन दोहों में भरी हैं। समय समय समय पर दोहे मनुष्य का बहुत कुछ पथ प्रदर्शन करते हैं।

इस पुस्तक में हमने ऐसे ही करीब ७०० दोहे चुन-चुन कर रखे हैं। तुलसी सतसई, रसनिधि सतसई, वृन्द सतसई, विक्रम-सतसई, राम सतसई, वीर सतसई, करुण सतसई, प्रेम सतसई, चतुर्भुज सतसई, श्याम सरोज सतसई, कबीर कवितावली, रहीम विलास, दुलारे दोहावली आदि पुस्तकों में से इन दोहों का चुनाव किया गया है। उपरोक्त पुस्तकों के रचयिता और प्रकाशक महानुभावों के हम हृदय से कृतज्ञ हैं, जिनके आधार पर इस पुस्तक का निर्माण होसका।

सुरुचि पूर्ण, शिक्षाप्रद, और उपयोगी दोहों को ही इस सङ्कलन में स्थान देने का प्रयत्न किया गया है, जिससे सांसारिक और मानसिक उभय प्रकार की जानकारी बढ़े और समय समय पर उचित पथ प्रदर्शन प्राप्त हो। आशा है कि सार्वजनिक विवेक को जगाने में सन्त कवियों के चुने हुए दोहों का यह सङ्कलन उपयोगी साबित होगा।

—श्रीराम शर्मा।

विवेक-सतसई।

ईश्वर-भक्ति—

कहत सकल घट राम मय, तौ खोजत केहि काज।
तुलसी कहैं यह कुमति सुनि, उर आवत अति लाज॥ १॥

अलख कहहिं देखन चहहिं, सो कस कहिय प्रवीन।
तुलसी जग उपदेश हो, वनि बुध अबुध मलीन॥ २॥

ब्रह्म फटिक मन सम लसै, घट घट मांझ सुजान।
निकट आय बरतै जो रङ्ग, सो रङ्ग लगै दिखान॥ ३॥

कोटि घटन में विदित ज्यों, रवि प्रतिविम्ब दिखाइ।
घट घट में त्यों ही छिप्यो, स्वयं प्रकाशी आइ॥ ४॥

यों सब जीवन को लखौ, ब्रह्म सनातन आद।
ज्यों माटी के घटन की, माटी ही बुनियाद॥ ५॥

पंचन पंच मिलाइ कै, जीव ब्रह्म में लीन।
जीवन मुक्त कहावही, रस-निधि वह परवीन॥ ६॥

अलख सबैई लखत वह, लख्यौ न काहू जाय।
दृग तारिन को तिल यथा, देखौ नहीं दिखाय॥ ७॥

हिन्दू में क्या और है? मुसलमान में और?
साहिब सब का एक है, व्यापि रहा सब ठौर॥ ८॥

अलख जान इन दृगन सों, विदित न देखौ जाइ।
प्रेम कांति वाकी प्रकट, सबही ठौर दिखाइ॥ ६॥

सब घट मेरा साइयां सूनी सेज न कोइ।
भाग्य उन्हीं के हे सखी जिहि घट परगट होइ॥ १०॥

कस्तूरी तन में बसै, मृग ढूंढे वन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नांहि॥ ११॥

घट वढ़ कहीं न जानिये, ब्रह्म रहा भरपूर।
जिन जानां तिन निकट है, दूरि कहैं ते दूरि॥ १२॥

वहुत दिवस भटकत रह्या, मन में विषै विसाम।
ढूँढत ढूँढत जग फिरा, तृण के ओटै राम॥ १३॥

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों खालिक घट माहि।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूंढन जाहिं॥ १४॥

आप मिटाये हरि मिलैं, हरि मैटें सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहूं न कोइ पतिआय॥ १५॥

पढ़ पढ़ के ज्ञानी भये, मिट्यौ नहीं तन ताप।
राम नाम तोता रटैं, कटें न बन्धन पाप॥ १६॥

गङ्गा यमुना सरस्वती, सात सिन्धु भरिपूरि।
तुलसी चातक के मते, बिना स्वाति सब धूरि॥ १७॥

कबीर माला ना जपों, जिह्वा कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं; मैं पावों विश्राम॥ १८॥

जदपि रह्यो है भावतो, सकल जगत भरपूर।
वलि जैयै वा ठौर की, जहँ ह्वै करै जहूर॥ १६॥

कठिन राम कौ काम है, सहज राम कौ नाम।
करत राम कौ काम जे, परत राम सों काम॥ २०॥

दीननु देखि घिनात जे, नहिं दीननु सों काम ।
कहा जानि ते लेत हैं, दीनबन्धु कौ नाम ॥ २१ ॥

रहिमन राम न उर धरै, रहै त्रिपथ लपटाय ।
भुस खावै पशु आप तें, गुड़ गुलियाये खाय ॥ २२ ॥

जो जन प्रेमी राम के, तिनकी गति है येह ।
देही से उद्यम करें, सुमिरन करें विदेह ॥ २३ ॥

ज्ञान गम्य कहते सभी, ज्ञानी नर दिन रात ।
उसे चाहते देखना, परम निराली बात ॥ २४ ॥

चलौ चलौ सब कोइ कहै, मोहि अँदेसा और ।
साहब सूं परचा नहीं, ये जाइहैं किस ठौर ॥ २५ ॥

कबीर हरि के नाम सूं, प्रीति रहै इकतार ।
तो मुख तें मोती झरें, हीरा अन्त न पार ॥ २६ ॥

राम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।
कबीर पीवन दुलभ है, मांगें शीस कलाल ॥ २७ ॥

कबीर हँसना दूर करि, करि रोवन सों चित्त ।
बिन रोये कैसे मिले, प्रेम पियारा मित्त ॥ २८ ॥

जौ रोऊँ तो बल घटै, हँसौं तो राम बिसाय ।
मन ही माँहि बिसूरना, ज्यों घुन काठहिं खाय ॥ २९ ॥

सुखिया सब संसार है, रहै खाय कै सोय ।
दुखिया दास कबीर है, जगि बिसरै कै रोय ॥ ३० ॥

बासर सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने मांह ।
कबीर बिछुटा राम से, ना सुख धूप न छांह ॥ ३१ ॥

प्रेम व्यथा तन में बसै, सब तन जर्जर होय ।
राम वियोगी ना जियै, जीयै तो बौरा होय ॥ ३२ ॥

प्रेम पियाला जो पिये, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दै सकै, नाम प्रेम का लेय ॥ ३३ ॥

लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी है गई लाल ॥ ३४ ॥

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावे सोय ॥ ३५ ॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागा जोग अनन्त।
संसय छूटा सुख भया, मिला पियारा कन्त ॥ ३६ ॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास।
मुख कस्तूरी महक सी, वाणी फूटी वास ॥ ३७ ॥

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघाडी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूलि भई सुख सौड़ ॥ ३८ ॥

मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ ३९ ॥

कबीर सीप समुद्र में, रटै पियास पियास।
समुद्रहि तिनका सम गिनै, स्वांति बूँद की आस ॥ ४० ॥

मांगत डोलत है नहीं, तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भगत की, उपमा देत लजात ॥ ४१ ॥

तुलसी केवल राम पद, लागै सहज सनेह।
तो घर घट बन बाट महँ, कतहु रहै किन देह ॥ ४२ ॥

कहा भयौ बन बन फिरे, जौ बनि आई नाहिं।
बनते बनते बनि गयेउ, तुलसी घर ही माँहि ॥ ४३ ॥

कबीर मन निर्मल भया, जैसे गङ्गा नीर।
पीछे लागे हरि फिरत, कहत कबीर कबीर ॥ ४४ ॥

आतम ज्ञान—

सर्व भूत में आतमा, आतम में सब भूत।
यह गूढ़ार्थ जिन्हें विदित, इनका ज्ञान प्रभूत ॥ ४५ ॥

अचरज को कासों कहैं, विन्दु में सिन्धु समान।
रहिमन अपने आपते, हेरन हार हिरान ॥ ४६ ॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।
बूँद समानी समद में, सो कत हेरी जाय ॥ ४७ ॥

लेत आत्म अनुभूति रस, शूर सबल स्वाधीन।
सके न करि कबहूँ कहूँ, आत्मलाभ बलहीन ॥ ४८ ॥

कबीर एक न जानियां, बहु जाना क्या होहि।
एकहि ते सब होत हैं, सब ते एक न होहि ॥ ४९ ॥

विद्या बल, धन रूप यश, कुल सुत वनिता मान।
सभी सुलभ संसार में, दुरलभ आतम ज्ञान ॥ ५० ॥

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक ही सब ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥ ५१ ॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
तब लगि पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥ ५२ ॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जानि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामें ज्योति पहचानि ॥ ५३ ॥

तन को जोगी सब करैं, मन को करै न कोय।
सब सिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ५४ ॥

राम बुलावा भेजिया, कबिरा दीना रोय।
जो सुख प्रेमी सङ्ग में, सो बैकुण्ठ न होय ॥ ५५ ॥

भाव भाव की सिद्धि है, भाव भाव में मेल।
जो मानों तो देव है, नहिं मानों तो डेल ॥ ५६ ॥

डर उछाव हित धरम सों, असुभ करम की हानि।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सों, ज्यों ज्वर छूटै जानि ॥ ५७ ॥

गावन में रोवन अहै, रोवन में ही राग।
एक वैरागी ग्रही में, एक ग्रही वैराग ॥ ५८ ॥

सिद्ध होत कारज सबै, जाके जिय विश्वास।
पूजत ऐपन कों हथा, तिय जिय पूरै आस ॥ ५९ ॥

जो पै जैसौ होइ तेहि, तैसौ ही मिल जाय।
मिलै गठकटा चोर कों, साह हि साह मिलाय ॥ ६० ॥

जोति सरूपी हिय सबै, सब सरीर में जोति।
दीपक धरिये ताक में, सब घर आभा होति ॥ ६१ ॥

देखत है जग जात है, तउ ममता सों मेल।
जानत हू मानत नहीं, देखत भूलौ खेल ॥ ६२ ॥

जेहि जेतो निहचै तितौ, देत दई पहुंचाय।
सक्कर खोरे को मिलै, जैसे सक्कर आय ॥ ६३ ॥

नारायण के सुत नरहिं, लघु करि गनियन न कोय।
अवसर लहि बट बीज ज्यों, दृढ़तर तरुवर होय ॥ ६४ ॥

रत्ती रत्ती करि बढ़त, मन बढ़ जात अतोल।
घटै भाव के मन यहै, लहै न कौड़ी मोल ॥ ६५ ॥

देव सेव फल देत हैं, जाके जैसे भाय।
जैसें मुख कर आरसी, देखौ सोइ दिखाय ॥ ६६ ॥

चेतावनी—

दीन गँवाया दुनी सों, दुनी न चाली साथ।
पांव कुल्हाड़ा मारिया, गाफिल अपने हाथ॥ ६७॥

दुनियां के धोखे मुआ, चले जो कुल की कान।
तब किसका कुल लाजि है, जब लौ धरा मसान॥ ६८॥

रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायौ खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥ ६९॥

सदा नगारा कूँच का, बाजत आठौं याम।
रहिमन जग में आइकैं, को करि रहा मुकाम॥ ७०॥

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
शीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देखा कोय॥ ७१॥

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
खलक चवैना काल का, कछु मुख में कछु गोद॥ ७२॥

पानी केरा बुदबुदा; यही हमारी जात।
एक दिना छिप जायंगे, ज्यों तारे परभात॥ ७३॥

वैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जिनका राम अधार॥ ७४॥

कालि करन्ता आज कर, आज करै सो हाल।
पीछे कछू न होयगौ, जो सिर आवै काल॥ ७५॥

रूखी सूखी खाय कै, ठण्डा पानी पीव।
देख बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव॥ ७६॥

तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं कोय॥ ७७॥

बिन रखवारे बाहिरा, चिड़ियों खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥ ७८ ॥

हाड़ जलैं ज्यों लाकड़ी, बाल जलैं ज्यों घास ।
सब जग जलता देखकर, भया कबीर उदास ॥ ७९ ॥

कबीर धूलि समेट कर, पुड़ी जु बांधी एह ।
दिवस चारि का पेखना, अन्त खेह ही खेह ॥ ८० ॥

कबीर सुपने रैन के, ऊघडि आये नैन ।
जीव पड़ा बहु लूटि में, जगै तो लैन न दैन ॥ ८१ ॥

कहा कियौ हम आय कर, कहा कहैंगे जाय ।
लाभ लेन तो दूर है, चाले मूल गँवाय ॥ ८२ ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोरि ।
नंगे हाथों वे गये, जिनके लाख करोरि ॥ ८३ ॥

यह तन कच्चा कुंभ है, लिये फिरै है साथ ।
ढक्का लागा फुटि गया, कछू न आया हाथ ॥ ८४ ॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बार ।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥ ८५ ॥

हवा फिरे ना पूंछि है, कोउ कौड़ी के तीन ।
या सों बहती नदी में, पांव पखार प्रवीन ॥ ८६ ॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान ।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ विपान ॥ ८७ ॥

काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करंत ।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों त्यों काल हसंत ॥ ८८ ॥

बेटा जाया तौ का भया, कहा बजावैं थाल ।
आना जाना ह्वै रहा, ज्यों कीड़ी का नाल ॥ ८९ ॥

कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जोरे लाख करोर ।
चलती बार न कछु मिल्यो, लई लङ्गोटी तोर ॥ ९० ॥

हाड़ जलैं ज्यों लाकड़ी, बाल जलैं ज्यों घास ।
सब जग जलता देख के, भयौ कबीर उदास ॥ ९१ ॥

एक दिन ऐसा होयगा, सब सों पड़े बिछोह ।
राजा राना छत्रिपति, सावधान किन होइ ॥ ९२ ॥

कबीर कहा गरबियौ, ऊंचे देखि अवास ।
कल मरघट में लेटना, ऊपर जमि है घास ॥ ९३ ॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस ।
ना जानैं कब मारि है, कै घर कै परदेस ॥ ९४ ॥

मानुस जन्म अमोल है, दीनों व्यर्थ बिताय ।
कह कीन्हीं जस जाय जग, रे नर ! कहत न काय ॥ ९५ ॥

कबहु तप्यो पर ताप ते ? हरी कबहु पर पीर ?
आसा हीन अधीर कहँ, कबहुँ बँधायी धीर ? ९६ ॥

आयौ आपति काल मँह, कहुँ काहू के काम ?
आप सह्यो सन्ताप कहुं, दै औरहि आराम ? ९७ ॥

हरे कबहुं दुख दीन के, प्रिय प्रानन पै खेल ?
विपति विडारी काहु की, आप आपदा झेल ? ९८ ॥

देखत पर परिताप कहु, कीन्हौं अश्रु निपात ?
अत्याचार अनीति बहु, देखि जरे कहुँ गात ? ९९ ॥

कहुँ अनाथ असहाय की, कीन्हीं कछुक सहाय ?
पार कियो कहुँ काहु को, अपनों हाथ गहाय ? १०० ॥

देखि दबो अज्ञान घन, दुखिया दारिद देस ।
ज्ञान बयारि बहाय कहुँ, जड़ता करी असेस ? १०१ ॥

काया कासी त्यागि अब, देखहु दीनन गेह ।
दरिद्र नरायन ही जहां, दर्शन देत सदेह ॥ १०२ ॥

महानता के लक्षण—

जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई योग ॥ १०३ ॥

शत शत प्रणवों तासु को, पीऊँ चरण पखार ।
ऊँचा जग में है वही; जाके उच्च विचार ॥ १०४ ॥

धनि रहीम जल पङ्क को, लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन जो, जगत पियासो जाय ॥ १०५ ॥

दूर कहा नियरे कहा, होनहार सो होय ।
नरियल की जड़ सींचिये, फूल में प्रकटै तोय ॥ १०६ ॥

दया धर्म हिरदै बसै, बोलैं अमृत बैन ।
तेई ऊंचे जानिए, जिनके नीचे नैन ॥ १०७ ॥

बड़े भलाई के जतन, तजैं लोक की लाज ।
बने चतुर्भुज चोर हू, नृप कन्या के काज ॥ १०८ ॥

बुरी करैं पर जे बड़े, भली करैं हित धारि ।
जैसे दधि बांध्यो तऊ, कपि दल दियो उतारि ॥ १०९ ॥

आप कष्ट सहि और की, शोभा करत सपूत ।
चरखी पींजन चरख खिंचि, जग ढांकत ज्यों सूत ॥ ११० ॥

बड़े बचन पलटैं नहीं, कहि निरबाहैं धीर ।
कियो विभीषन लङ्कपति, पाय विजय रघुबीर ॥ १११ ॥

तुलसी तीनों लोक में, चातक ही को माथ ।
सुनियतु जासु न दीनता, किये दूसरो नाथ ॥ ११२ ॥

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचौ नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ॥ ११३ ॥

कै बरसै घन समय सिर, कै भरि जनम निरास।
तुलसी याचक चातकहि, एक तिहारी आस ॥ ११४ ॥

ह्वै अधीन याचै नहीं, सीस नाइ नहि लेइ।
ऐसे मानी याचकहि, को वारिद बिनु देइ ॥ ११५ ॥

व्याधा बध्यौ पपीहरा, परेउ गङ्गा जल जाय।
चोंच मूँदि पीवै नहीं, जनि जीवन घन जाय ॥ ११६ ॥

प्यास सहत पीसक्त नहि, औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी, गज के ही गल आन ॥ ११७ ॥

मान सहित विष पान करि, शम्भु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पियो, राहु कटायो सीस ॥ ११८ ॥

सिहन के लेंहड़े नहीं, हंसन की नहि पांत।
लालन की नहि बोरियां, साधु न चलै जमात ॥ ११९ ॥

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबौ भलौ, जो विष देय बुलाय ॥ १२० ॥

दीप शिखा जलती हुई, विमल सिखाती ज्ञान।
तब तक नर जलता नहीं, जगत न करता मान ॥ १२१ ॥

नीरज रहता नीर में, नहीं भींगते पात।
सज्जन जन जग बीच ज्यों, रहते हैं दिन रात ॥ १२२ ॥

चाल चलो जग में वही, जिससे बनो महान।
सज्जन बने बन जाओगे, पाओगे सन्मान ॥ १२३ ॥

ऊँच जनम जन जे हरै, नित नमि नमि परपीर।
गिरिवर तें ढरि ढरि धरनि, सींचत ज्यों नद नीर ॥ १२४ ॥

संतत सहज सुभाव सों, सुजनि सबै सनमानि।
सुधा सरस सींचत सवन, सनी सनेह बानि॥ १२५॥

चतुर आपनौ और कौ, साधत काज सतोल।
अङ्गद अपनौ राम कौ, काज कियौ अनमोल॥ १२६॥

भले बुरे हू सों करत, उपकारी उपकार।
तरुवर छाया करत हैं, नीच न ऊँच विचार॥ १२७॥

तुलसी संत सु रम्य तरु, फूल फलहि पर हेत।
ये इततें पाहन हनत, वे उततें फल देत॥ १२८॥

तुलसी देवल देव में, लागे लाख करोर।
काग अभागे हंसि भरैं, महिमा भई न थोर॥ १२९॥

राम लखन विजयी भये, वनहुँ गरीब नेवाज।
मुखर बालि रावन गये, घर ही सहित समाज॥ १३०॥

पशु पन्ती हू जानहीं, अपनी अपनो पीर।
तब सुजान जानों तुम्हें, जब जानों पर पीर॥ १३१॥

अमित अथाहै हौ भरे, जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जो न तुम, आये प्यासेन काम॥ १३२॥

काज बिगारत आपनों, सुजन और के काज।
बलिहि निवारत नैन की, हानि सही भृगुराज॥ १३३॥

पशु पन्ती हू जानहीं, अपनी अपनी पीर।
उनको सज्जन जानिए, जो जानैं पर पीर॥ १३४॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहिं सुजान॥ १३५॥

चंदन तरु को यदपि विधि, फल और फूल न दीन।
तदपि अहो! निज तन करन, और न ताप विहीन॥ १३६॥

अहित किये हू हित करैं, सज्जन परम सधीर।
सोखे हू शीतल करे, जैसे नीर समीर॥ १३७॥

ओरहिं तें कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयाल।
कौन सिखावत है कहो, राज हंस को चाल॥ १३८॥

कबिरा सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥ १३९॥

संत कष्ट सहि आपुही, सुखि राखै जु समीप।
आप जरै तऊ और कौं, करै उजेरौ दीप॥ १४०॥

वृक्ष कबहुँ नहिं फल चखें, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारनें, साधू धरैं सरीर॥ १४१॥

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोकों फूल के फूल हैं, वाकौ हैं तिरसूल॥ १४२॥

अग्नि धर्म है दहन ज्यों, जल का शीतल धर्म।
परहित जीवन मरण त्यों, नरका निर्मल धर्म॥ १४३॥

तू सज्जन या बात कौ, समुझि देख मन माहिं।
अरे दया में जो मजा सो, जुलमन में नाहिं॥ १४४॥

सज्जन हो, या बात को, करि देखो जिय गौर।
बोलन चितवन चलन वह, दरद-वंत कौ और॥ १४५॥

जब देखौ तब भलेन तें, सजन भलाई होहि।
जारैं जारैं अगर ज्यों, तजत नहीं खसबोहि॥ १४६॥

भले बुरे, छोटे बड़े, रहैं बड़ेनि पै आय।
मकर असुर सुर गिर अनल, दधि मधि सकल बसाय॥ १४७॥

बड़े भार लै निरबहै, तजत न खेद बिचारि।
शेष धरा धरि धर धरैं, अबलों देत न डारि॥ १४८॥

बिन बूझे ही जानिए, बुध मूरख मन मांहि ।
छलकैं ओछे नीर घट, पूरे छलकत नाहिं ॥ १४९ ॥

अति उदारता बड़ेन की, कहँलौं बरनै कोय ।
चातक जाचै तनिक घन, बरस भरे घन तोय ॥ १५० ॥

भले बुरे निबहैं सबै, महत पुरुष के संग ।
चन्द्र सर्प जल अगिन ए, बसत शंभु के अंग ॥ १५१ ॥

बिना कहे हू सत पुरुष, पर की पूरें आस ।
कौन कहत है सूर्य कों, घर घर करत प्रकास ॥ १५२ ॥

बड़े बड़ें सों रिस करैं, छोटे सों न रिसाय ।
तरु कठोर तोरै पवन, कोमल तृन बचि जाय ॥ १५३ ॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल ।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥ १५४ ॥

जो बड़ेन कौं लघु कहौ, नहि रहीम घटि जाहि ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुखपावत नाहिं ॥ १५५ ॥

नीति अनीति बड़े सहैं, रिस भरि देत न गारि ।
भृगु उर दीनी लात पै, कीनी हरि मनु हारि ॥ १५६ ॥

जो जितनी सेवा करे, ताकी तिती बड़ाय ।
काम करैं सब जगत के, ताते त्रिभुवन राय ॥ १५७ ॥

बिपति बड़े ही सहि सकैं, इतर बिपति तें दूर ।
तारे न्यारे रहत हैं, ग्रसैं राहु शसि सूर ॥ १५८ ॥

दीन सबन कों लखत है, दीनहिं लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहि लखै, दीन बन्धु सम होय ॥ १५९ ॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय ।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय ॥ १६० ॥

त्यों रहीम गुरु दुख सहत बड़े लोग सह सान्ति ।
उगत चंद जेहि भांति सों, अथवत ताही भांति ॥ १६१ ॥

रन वन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय ।
जो रक्षक जननी जठर, सो हरि गये न सोय ॥ १६२ ॥

साधु चरित नवनीत सो, कह्यो कवीन वृथाहिं ।
वह अपने आतप द्रवै, यह दूजे दुख मांहि ॥ १६३ ॥

पर कारज साधहिं सदा, तजि सुख स्वार्थ अनंत ।
पदम पत्र जिमि जग जियें, धनि धनि संत महंत ॥ १६४ ॥

मनुष्यता के लक्षण—

जग की सारी सम्पदा, धर्म विना निःसार ।
लवण विना जैसे वनो, व्यंजन विविध प्रकार ॥ १६५ ॥

सत्य शील शुचि ब्रह्म पर, न्याय परायन धीर ।
शोच न करते दुख पड़े, रहते सदा गंभीर ॥ १६६ ॥

कहे वचन पलटैं नहीं, जो सत् पुरुष सधीर ।
कहत सबै हरिचंद नृप, भर्यो नीच घर नीर ॥ १६७ ॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होय ॥ १६८ ॥

रहिमन चित्त अधर्म को, जरत न लागै वार ।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥ १६९ ॥

मात पिता गुरु को करत, जे आदर सत्कार ।
ते भाजन सुख सुयश के, जीवैं वर्ष हजार ॥ १७० ॥

श्रवन करी यों कीजिए, माता पिता की सेव ।
कांधे कावरि लै फिर्यो, पूजे जैसे देव ॥ १७१ ॥

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुस चून॥ १७२॥

जी पै जग खेले विना, मिलै न यस, धन, मीत।
काजल मँहदी, दीप ये, बता रहे परतीत॥ १७३॥

धीरज धर कारज करे, आरत बनें न नेक।
यही मार्ग है धर्म का, कटते कष्ट अनेक॥ १७४॥

स्वच्छ करे तन यतन सों, मन वर्जित कुविचार।
मुनि गण ज्ञान निधान यह, शोध किया निर्धार॥ १७५॥

पर नारी के नेह में, फँसते ज्ञान अज्ञान।
ज्ञान बूझ कर वो मनों, करते हैं विष पान॥ १७६॥

पर तिय माता सम गिनै, पर धन धूरि समान।
आपने सम सबको गनै, यही ज्ञान विज्ञान॥ १७७॥

सिर राखे सिर जात है, शिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय॥ १७८॥

अति अनीति लहिये न धन, जो प्यारो मन होय।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारै कोय॥ १७९॥

एक भले सबको भलो, देखो सबद विवेक।
जैसे सत हरिश्चन्द को, उधरे जीव अनेक॥ १८०॥

एक बुरे सबको बुरो, होत जगत परकास।
एक दुर्योधन के बुरे, सब छत्रिन को नास॥ १८१॥

मान होत है गुननि तें, गुन बिन मान न होइ।
शुक सारी राखैं सबै, काग न राखत कोइ॥ १८२॥

आडंबर तजि कीजियै, गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहित न बिकै गऊ, आनौ घँट बँधाय॥ १८३॥

करै न कबहुँ साहसी, नीच पतित दुर काज।
भूख सहै पर घास कों, नहीं भखै मृगराज॥ १८४॥

सहज सील गुन सजन के, खल सो होत न भंग।
रतन दीप की ज्योति ज्यों, बुझत न बात प्रसंग॥ १८५॥

सबको सुख पहुँचावहीं, सुहृद जनन कौ हेत।
दूरहिं सूरज उदित ज्यों, कमलन कों सुख देत॥ १८६॥

अमित लोभ ते हानि बड़, पै न करैं परतीत।
हेम हिरन पीछे गये, राम गवाई सीत॥ १८७॥

आप तरै तारै पथिक, काठ नाव चित चाव।
बूढै बोरै और कौं, ज्यों पत्थर की नाव॥ १८८॥

जूआ खेलै होतु है, सुख संपति कौ नास।
राजकाज नल कौ छुटौ, पाण्डव किय बनवास॥ १८९॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो ऊपनी कहैं, क्यों न फजीहत होय॥ १९०॥

बिना दिये न मिलैं कछू यह समभौ सब कोय।
होत सिसिर में पात तरु, सुरभि सपल्लव होय॥ १९१॥

चिरजीवी तन हू तजे, जाकौ जग जस वास।
फूल गये हू फूल की, रहै तेल में बास॥ १९२॥

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
बोवै पेड़ बबूल को, आम कहां ते होइ॥ १९३॥

होय बुराई तें बुरी, यह कीनो निरधार।
खाई खोदै और कों, ताको कूप तैयार॥ १९४॥

देत न प्रभु कछु बिन दिये, दिये देत यह बात।
लै तंदुल धन बिप्र को, तृत कियो यदु नाथ॥ १९५॥

वचन रचन का पुरुष के, कहे न छिन ठहराय ।
ज्यों कर पद मुख कछप के, निकसि निकसि दुरि जायँ ॥ १९६ ॥

सुबुध बीच परि दुहुँन के, करत कलह दुख दूर ।
करत देहरी दीप ज्यों, घर आंगन तम दूर ॥ १९७ ॥

खल सज्जन सूचीन के, भाग दुहूँ सम भाय ।
निगुन प्रकासै छिद्र कों, सगुन सु ढांपत जाय ॥ १९८ ॥

विद्या विन न विराजहीं, जदपि सरूप कुलीन ।
ज्यों सोभा पावै नहीं, टेसू वास विहीन ॥ १९९ ॥

ज्ञान, गरीबी, गुरु धरम, नरम वचम, निरमोख ।
तुलसी कबहु न छोड़िए, शील, सत्य, संतोष ॥ २०० ॥

जीवन मरण विचार के, कूड़े काम निवारि ।
जिस पथ से चलना तुझे, सोई पंथ सँभारि ॥ २०१ ॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम क्या बात ।
जैसे कुलकी कुलबधू, चिथड़न मांह समात ॥ २०१ ॥

साधु कहावन कठिन है, लंवा पेड़ खजूर ।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकना चूर ॥ २०२ ॥

आगि लगी आकाश में, झरि झरि परै अंगार ।
कविरा जरि कंचन भया, कांच भया संसार ॥ २०४ ॥

बुध जन शील न त्यागिए, धनी मूर्ख अवरेख ।
कुलजा सील न परिहरै, वेश्या भूषित देख ॥ २०५ ॥

समहित सहित समस्त जग, सुहृद जानु सव काहु ।
तुलसी यह मति धारु उर, न प्रति अति सख लाहु ॥ २०६ ॥

कष्ट परेहू साधु जन, नैक न होत मलान ।
ज्यों ज्यों स्वर्ण तपाइये, त्यों त्यों निरमल वान ॥ २०७ ॥

सुधरी बिगरै वेग ही, बिगरी फिर सुधरै न।
दूध फटै कांजी परे, सो फिर दूध बने न ॥ २०५ ॥

सहज रसीलौ होय सो, करै अहित पर हेत।
जैसे पीड़ित कीजिये, ऊख तऊ रस देत ॥ २०६ ॥

डरै न काहू दुष्ट सों, जाहि प्रेम की बान।
भौंर न छांड़ें केतकी, तीखे कंटक जान ॥ २१० ॥

सब तै लघु है मांगिवो, जा में फेर न सार।
बलि पै जांचत ही भये, बावन तन करतार ॥ २११ ॥

होइ विपुल संपति तऊ, गुन युत भये उदोत।
तेल भर्यौ दीपक तऊ, गुन बिनु जोति न होत ॥ २१२ ॥

कहा भयौ जो धन भयौ, गुन तैं आदर होइ।
कोटि होइ उत्तम धनुष, गुन बिन गहत न कोइ ॥ २१३ ॥

रस पोषै बिनहू रसिक, रस उपजावत संत।
बिन बरसै सरसै रहैं, जैसे विटप बसंत ॥ २१४ ॥

जो प्रानी परबस पर्यौ, सो दुख सहत अपार।
जूथ बिछोही गज सहै, बंधन अंकुस मार ॥ २१५ ॥

मन प्रसन्न तन चैन जह, स्वेच्छाचार विचार।
संगी मृगी मृग सुख सबै, बन बिस तृन आहार ॥ २१६ ॥

तुलसी साथी बिपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकरित, सत्य ब्रत, राम भरोसे एक ॥ २१७ ॥

विद्या विनय विवेक रति, रीति जासु उर होइ।
राम परायन जो सदा आपद ताहि न होइ ॥ २१८ ॥

बड़े गुनी लघुता गहैं, तेहि सनमानत धीर।
मंद तऊ प्यारो लगै, सीतल सुरभि समीर ॥ २१९ ॥

जहां रहै गुनवंत नर, ताकी शोभा होत।
जहां धरै दीपक तहां निहचै करै उदोत ॥ २२० ॥

चुरट चाटती है हियो, होय रंग बद रङ्ग।
गांजा और अफीम ये, करैं देह अन ढङ्ग ॥ २२१ ॥

तजौ नसा जो नासता, धन बल कल सुख शान्ति।
दे आलस मालस करै, बुद्धी तन मन भ्रान्ति ॥ २२२ ॥

सत्य और असत्य—

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप ॥ २२३ ॥

सांच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहे, कंचन केहि विधि होय ॥ २२४ ॥

जाकी सांची सुरति है, ताका सांचा खेल।
आठ पहर चौसठ घड़ी, है सांई सो मेल ॥ २२५ ॥

सांई सों सांचा रहो, सांई सांच सुहाय।
भावै लम्बे केश रख, भावै मूँड मुडाय ॥ १२६ ॥

मुक्ति सत्य के साथ है, यतन करो मत कोय।
खेती करो अनाज की, सहज घास भुस होय ॥ २२७ ॥

चलिये पैड़ें सांच के सांई सांच सुहाय।
सांचौ जरै न आग तें, झूठौ ही जरि जाय ॥ २२८ ॥

सत्य वचन मुख जो कहत, ताकी चाह सराह।
गाहक आवत दूर ते, सुनि एक शब्दी शाह ॥ २२९ ॥

झूठ बसै जा पुरुष में, ताही की अप्रतीत।
चोर जुआरी सों भगे, यातें करत न प्रीति ॥ २३० ॥

कबहूं झूठी बात को, जो करिहै पछताय।
झूठे संग झूठौ परत, फिर पाछें पछतात ॥ २३१ ॥

जग परतीत बढ़ाइये, रहिये सांचे होय।
झूठे नर की सांच हूं, साखि न मानै कोय ॥ २२६ ॥

भवन बीच रहु विमल वनि, क्यों जावहु वन घोर।
तजौ दुखद, निज कुटिल मति, सुख है चारों ओर ॥ २३३ ॥

वैष्णव भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक लगाय कर, दगध्या लोक अनेक ॥ २३४ ॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये वास न जाय ॥ २३५ ॥

दुनिया मन्दिर देहरी, शीस नवावन जाय।
हिरदे भीतर हरि वसें तू ताही सों लौ लाइ ॥ २३६ ॥

मुल्ला मुनीर क्या चढै, सांई न बहरा होइ।
जा कारन तू बांग दे, दिल के भीतर सोइ ॥ २३७ ॥

वैष्णव हुआ तो क्या हुआ, माला मेली चारि।
बाहर कंचनवा रहा, भीतर भरी भंगारि ॥ २३८ ॥

शेख सबूरी बाहरा, क्या हज कावें जाय।
जाका दिल साबित नहीं, ताकौं कहां खुदाय ॥ २३९ ॥

तीरथ करि करि जग मुआ, डूबे पानी न्हाय।
राम नाम जप के बिना, काल घसीटा जाय ॥ २४० ॥

काशी कावें घर करै, पीवै निर्मल नीर।
मुक्ति नहीं हरि नाम बिन, यों कहैं दास कबीर ॥ २४१ ॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढै सो पंडित होय ॥ २४२ ॥

माला प्हरे कुछ नहीं, गांठ हृदय की खोइ।
हरि चरनन चित राखिये तो अमरापुर होइ ॥ २४३ ॥
केशन कहा बिगाड़िया, जो मूडे सौ बार।
मन को काह न मूँडिया, जा में विषय विकार ॥ २४४ ॥
काबा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥ २४५ ॥
हिन्दू मूए राम कहि, मुसलिम कहें खुदाइ।
कहें कबीर सो जीवता, दुइ में कभी न जाइ ॥ २४६ ॥
पत्थर केरा पूतला, करि पूजें करतार।
इसो भरोसे जे रहे, ते बूढे मँझधार ॥ २४७ ॥
दुनियां ऐसो बावरो, पत्थर पूजन जाय।
घर की चाकी कोई न पूजे, जाका पीसा खाय ॥ २४८ ॥
माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
करका मनका डार दे, मन का मनका फेर ॥ २४९ ॥
पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजों पहार।
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार ॥ २५० ॥
कांकर पाथर जोर कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरो भयो खुदाय ॥ २५१ ॥

संगति—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग।
होहि न तासम सकल मिलि, जो सुख क्षण सतसंग ॥ २५२ ॥

हरि से तू जानि हेति करि, करि हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देति हैं, हरिजन हरि ही हेत॥ २५३॥

कबिरा संगति साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड़ भोजन मिलै, नहिं कुसंग में जाय॥ २५४॥

कबिरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तोऊ बास सुबास॥ २५५॥

नीचहु उत्तम संग मिलि, उत्तम ही ह्वै जाय।
गंग संग जल निन्धहू, गंगोदक कहलाय॥ २५६॥

जहां सुजन तहं प्रीति है, प्रीति तहां सुख ठौर।
जहां पुष्प तहां बास है, जहां बास तहं भौर॥ २५७॥

यों कहि रहीम यश होत है, उपकारी के संग।
बांटन वारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग॥ २५८॥

जाति न पूछे साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरबार का, पड़ा रहन दो म्यान॥ २५९॥

असन बसन सुत नारि, सुख पापिहु के घर होइ।
संत समागम प्रेमधन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥ २६०॥

सो गुरु राम सुजान सग, नहीं विषमता लेस।
ताकी कृपा कटाच्छ तें, रहे न कठिन कलेस॥ २६१॥

तुलसी सतगुरु के अहहिं, आनंद मय उपदेश।
संसय रोग नसाय सब, पावै पुनि न कलेस॥ २६२॥

रुचि बाढ़इ सतसंग महँ, नीति क्षुधा अधिकाइ।
होत ज्ञान बल पीन अल, त्रिजिन विपति मिटि जाइ॥ २६३॥

स्वारथ सो जानहु सदा, जासों विपति नसाय।
तुलसी गुरु उपदेसु बिनु, सो किम जानों जाय॥ २६४॥

सत संगति को फल यही, संसय रहइ न लेस।
है असथिर शुचि सरल चित, पावै पुनि न कलेस॥ २६५ ॥

यथा अमल पावन पवन, पाय सुसंग कुसंग।
गहत सुवास कुवास तिमि, जानहु चित्त न प्रसंग॥ २६६ ॥

सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति के फल सूर २६७॥

होत चाह तब होतु है, प्रेम सु सज्जन संग।
पास दियै बिन वांस पर चढ़ै न गहरौ रंग॥ २६८ ॥

जैसी संगति तैसई, इज्जत मिलि है आय।
सिर पै मखमल सेहरै, पनही मखमल पाय॥ २६९ ॥

होत सुसंगति सहज सुख, दुख कुसंग के थान।
गंधी और लुहार की, देखहु बैठि दुकान॥ २७० ॥

मिलै सुसंगति उच्चहू, करत नीच सो प्यार।
खर, को गंग न्हवाइये, तऊ न छांड़ै छार॥ २७१ ॥

जैसे थानक सेइए, तैसौं पूरें काम।
सिंह गुफा मुक्ता मिलैं, स्यार खुरी खुर चाम॥ २७२ ॥

पंडित पंडित सौं मिलैं संसय मिटत न वेर।
मिलै दीप दुहु दुहुन कौं, होत अंधेर निवेर॥ २७३ ॥

जाने हृदय कठोर तेहिं, जगैं न हित के बैन।
मैन बान जो पथर में, क्यों हू किये भिदै न॥ २७४ ॥

तिनके कारज होत है, जिनके बड़े सहाय।
कृष्ण पच्छ पांडव जयी, कौरव गये विलाय॥ २७५ ॥

उत्तम जन सौं मिलत ही, अवगुन हू गुन होय।
घन संग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठौ तोय॥ २७६ ॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥ २७७॥

रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल॥ २७८॥

उपकारी उपकार जग, सबसौं करत प्रकाश।
ज्यों कहु मधुरे तरु मलय, मलयज करत सुबास॥ २७९॥

जुदे जुदे नहिं लहत कछु, मिले विरंगहु रंग।
कत्था संग चूना परत, होत लाल मिलि संग॥ २८०॥

होय शुद्ध मिटि कलुषता, सत संगति को पाय।
जैसे पारस को परसि, लौह कनक ह्वै जाय॥ २८१॥

उत्तम जन के संग में, सहजै ही सुख बास।
जैसे नृप लावै अतर, लेय सभा जन बास॥ २८२॥

जिहि प्रसंग दूषन लगै, तजिए ताकौ साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ॥ २८३॥

जाके संग दूषन दुरै, करिए तिहिं पहिचान।
जैसे समझै दूध सब, सुरा कलारी पानि॥ २८३॥

जिहि देखैं लाञ्छन लगै, तासौं दृष्टि न जोर।
ज्यों कोई चितवै नहीं, चौथ चन्द की ओर॥ २८५॥

इक समीप वसि अहित करि, इक हित कर वसि दूर।
हंस विनासै कमल दल, अमल प्रकासै सूर॥ २८६॥

सत संगति में सुख बड़ौ, जो करि जानै कोय।
आधौ छिन सतसंग को, कलिमल डारै खोय॥ २८७॥

कबीर बन बन में फिरा, कारन अपने राम।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम॥ २८८॥

कबीरे चन्दन के भिरे, बैठे आक पलास।
आपु सरीखे करि लिये, जे बैठे उन पास॥ २८६॥

कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ।
जाय मिलै जब गंग में, सब गंगादिक होइ॥ २६०

रहिमन उज्ज्वल नरन को, उचित न नीचौ संग।
घुसि काजल की कोठरी, धब्बा लागत अंग॥ २६१॥

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥ २६२॥

बसि कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस॥ २६३॥

रहीम नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि॥ २६४॥

कुटिलनि संग रहीम कहि, साधु विपत्ति उठाहि।
ज्यों नैना सैना करैं, उरज उमेठे जाहिं॥ २६५॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेरकेर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥ २६६॥ २६६॥

मुकता करि करपूर कर, चातक जीवन जोय।
रहीम ऐसो स्वाति जल, व्याल बदन विष होय॥ २६७॥

विवेक—

गरल वृक्ष संसार में, दोइ फल उत्तम सार।
स्वाध्याय रस पान पुनि, सत संगति सुख सार॥ २६८॥

ब्रह्मचर्य आश्रम सुखद, अग सहि करो सप्रीति।
षट् साल औ बालिका, यही सनातन रीति॥ २६६॥

विद्या धन आधार है, विद्याबल आधार ।
यह मत जो धारण करे, वह सब गुण आगार ॥ ३०० ॥
कर्तव्याकर्तव्य गुनि, गहै प्रशस्त विचार ।
रहैं सदा सुविवेक रत, सांची शिक्षा सार ॥ ३०१ ॥
पढ़ी न आयी काम पै, 'चित्रग्रीव' की उक्ति ।
अपनी अपनी क्यों करै, सबतें सबकी युक्ति ॥ ३०२ ॥
निबल, निरुधम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास ।
जड़, कायर, करिदेत हैं, नरहि अंध विस्वास ॥ ३०३ ॥
बिना ग्यान कौ करम कहूँ, तारि सकै संसार ।
कहा काट करिहौ जु कर, धार बिना तरवार ॥ ३०४ ॥
जन्मत ही पावै नहीं, भली बुरी कोउ बात ।
बूझत बूझत पाइये, ज्यों ज्यों समुझत जात ॥ ३०५ ॥
भलौ ज्ञान, अज्ञान नहिं, है अज्ञान न ज्ञान ।
भानु उदै तौ तम नहीं, है तम उदै न भान ॥ ३०६ ॥
सरसुति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात ।
ज्यौं खरचै त्यौं त्यौं बढै, बिन खरचे घटि जात ॥ ३०७ ॥
देखा देखी करत सब, नाहिन तत्त्व विचार ।
यह निश्चय ही जानिये, भेड़ चाल संसार ॥ ३०८ ॥
ज्यों ज्यों छुटै अयान पन, त्यों त्यों प्रेम प्रकास ।
जैसे कैरी आम की, पकरत पके मिठास ॥ ३०९ ॥
गहत तत्त्व ज्ञानी पुरुष, बात विचार विचार ।
मथनि हारि तजि छाछ कों, माखन लेत निकारि ॥ ३१० ॥
या लच्छन ते जानिये, उर अज्ञान निवास ।
अरुचि होय सत्संग में, रुचै हास्य परिहास ॥ ३११ ॥

ग्रन्थ कीट बनि व्यर्थ क्यों, करत सुबुद्धि बिनास ।
खोलहु द्वार दिमाग के, पावहु पुण्य प्रकास ॥ ३१२ ॥

केवल ग्रन्थन के पढ़े, आवागमन न जाय ।
षट् रस भोजन लखे तें, बिन खाये न अघाय ॥ ३१३ ॥

होय कछू समुझै कछू, जाकी मति बिपरीत ।
कमलवाय रोगी लखै, श्याम स्वेत को पीत ॥ ३१४ ॥

कोउ बिन देखे बिन सुने, कैसे सकै बिचार ।
कूप भेख जाने कहा, सागर को बिस्तार ॥ ३१५ ॥

सांच झूठ निरनय करै, नीति निपुन जो होय ।
राज हंस बिन को करै, नीर छीर कौ दोय ॥ ३१६ ॥

फल बिचार कारज करौ, करहु न व्यर्थ अमेल ।
ज्यों तिल बारू पेरिए, नाहिन निकसै तेल ॥ ३१७ ॥

पीछे कारज कीजिए, पहले पहुंच बिचार ।
कैसे पावत उच्च फल, बावन बांह पसार ॥ ३१८ ॥

फिर पीछे पछताइए, जो न करै मति सूध ।
बदन जीभ हिय जरत है, पीवत तातौ दूध ॥ ३१९ ॥

अन्तर अंगुली चारि कौ, साच झूठ में होइ ।
सब मानें देखी, कही सुनी न मानें कोइ ॥ ३२० ॥

जहां ज्ञान तहँ धर्म है, जहां झूठ तहां पाप ।
जहां लोभ तहँ काल है, जहां क्षमा तहँ आप ॥ ३२१ ॥

तन सुखाइ पंजर करै, धरै रैन दिन ध्यान ।
तुलसी मिटै न वासना, बिना बिचारे ज्ञान ॥ ३२२ ॥

कल्पवृक्ष को चित्र लिखि, कीन्हे बिनय हजार ।
चित्त न पाइय ताहि सों, तुलसी देखु बिचार ॥ ३२३ ॥

अनूमान साक्षी रहित, होत नहीं परमान ।
कह तुलसी प्रत्यक्ष जो, सो कहहु अपर को आन ॥ ३२४ ॥

प्रथम ज्ञान समुझै हिये, विधि निषेध व्यवहार ।
उचितानुचितहिं हेरि हिय, करतव करिय सँभार ॥ ३२५ ॥

वेद पुराणहु शास्त्र जत, तत वुधि बल अनुमान ।
अनुभव वृद्धि विवेक युत, सो तुलसी परमान ॥ ३२६ ॥

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान ।
जो विचार व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ॥ ३२७ ॥

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तन पीठि ।
अन्धे को सब कछु मिला, दोउ नयन अरु दीठि ॥ ३२८ ॥

अन समझे नहि मानिए, अनसि समुझिए आप ।
तुलसी आपुन समुझ बिन, पग पग पर परिताप ॥ ३२९ ॥

हित पर बढ़त विरोध जब, अनहित पर अनुराग ।
राम विमुख विधि वाम गति, सगुन अघाय अभाग ॥ ३३० ॥

वेद पुरान विवाद में, मति उरझै मतिमान ।
सार गहे सब ग्रन्थ को, अपनी बुद्ध प्रमान ॥ ३३१ ॥

कै जूझिबौ कै बूझिबौ, दान कि काय कलेस ।
चारि चारु परलोक पथ, जथा जोग उपदेश ॥ ३३२ ॥

मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरि हर सुर सर्व ।
महामत्त गजराज कहँ, बस करि अंकुश खर्व ॥ ३३३ ॥

का भाषा का संसकृत, भाव चाहिए सांच ।
काम जो आवै कामरी, का लै करिय कमाच ॥ ३३४ ॥

बर माला बाला सुमति, उर धारै जुत नेह ।
रूख शोभा सरसाय नित, लहै राम पद गेह ॥ ३३ ॥

अनुभव, सत्य विवेक युत, वचन लेत जो मान ।
गुरु मुख ताकों जानिए, चतुर प्रवीन, सुजान ॥ ३३६ ॥

मन सों छूटे ना अजों, करत अंध विश्वास ।
छींक भई काटी गली, बिल्ली देख उदास ॥ ३३७ ॥

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गन गहहिं, परिहरि बारि विकार ॥ ३३८ ॥

जांच किये बिन और की, बात सांच मति थर्प ।
होत अँधेरी रैन से, परी जेवरी सर्प ॥ ३३६ ॥

मोह महातम रहतु है, जौ लौं ज्ञान न होत ।
कहा महातम रहि सकै, भये आदित्य उदोत ॥ ३४० ॥

भले बुरे सौं एकसी, मूढ़नि की परतीत ।
गुंजा सम तोलत कनक, तुला पल्ला की रीति ॥ ३४१ ॥

जाकों बुधिबल होत है, ताहि न रिपु को त्रास ।
घन बूंदें कह करि सकें, सिर पर छतना जास ॥ ३४२ ॥

जामें हित सो कीजिए, कोऊ कहौ हजार ।
छल बल साधि बिजै करी, पारथ भारत बार ॥ ३४३ ॥

सुनिये सबकी ही कही, करिये सहित विचार ।
सबलोक राजी रहें, सो कीजे उपचार ॥ ३४४ ॥

रहिमन बनिये सूप से, लीजे जगत पछोर ।
हलकन को उड़ि जान दें, गरुए राखि बटोर ॥ ३४५ ॥

प्यारो अन प्यारी लगे, समे पाय सब बात ।
धूप सुहावे शीत में, सो ग्रीषम न सुहात ॥ ३४६ ॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा रूप सुभाय ।
सार सार को गहे रहे, थोथा देइ उड़ाय ॥ ३४७ ॥

प्रेम—

प्रेम निवाहन कठिन है, समुझि कीजिये कोय।
भांग भखन है सुगम पै, लहर कठिन ही होय॥ ३४८॥

प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिलते न मिलाय।
दूध दही तें जमत है, कांजी तें फट जाय॥ ३४९॥

सज्जन अंगीकृत किये, ताकौं लेत नवाहि।
राखि कलंकी कुटिल ससि तउ शिव तजत न ताहि॥ ३५०॥

सांके सीधे को मिलन, निबहै नाहिं निदान।
बान सरल तोऊ तजत, जैसे बक्र कमान॥ ३५१॥

बिनसत बार न लागई, ओछे जन की प्रीत।
अम्बर डम्बर सांझ के, ज्यों बारू की भीति॥ ३५२॥

प्रेम लगन जासों भई, सुख दुख ताके संग।
बसत कमल अलि बास बसि, सो कमल भखत मतंग॥ ३५३॥

जाहि मिले सुख होतु है, ता बिछुरे दुख होय।
सूर उदै फूले कमल, ता बिन सकुचै सोय॥ ३५४॥

कहिये तासों जो हितू, भली बुरी हू जाय।
चोर करै चोरी तऊ सांच कहे घर जाय॥ ३५५॥

रहिमन प्रीति सराहिये, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजे, तजे सफेदी चून॥ ३५६॥

रहिमन नेह लगाइवें, देखिलेउ किन कोय।
नर को बस करिवो कहा, नारायन बस होय॥ ३५७॥

हित करियत यह भांति अरु, करिये मित्र यह भांति।
नीर छीर ते पूछिये, हित करिवे की बात॥ ३५८॥

बढ़त आपनौ गोत सों, और सबै अनखाइ ।
सुहृद नैन नैना बढ़े, देखत हियौ सिहाइ ॥ ३५९ ॥
मंता तू चाहत कियौ, सूखी बतियन जोत ।
नेह बिना ही रोसनी- देखी सुनी न होत ॥ ३६० ॥
आप बसाते सज्जना, नेह न दीजे जान ।
नेही तिल नेहैं तजे, खरि है जात निदान ॥ ३६१ ॥
मीता तू या बात को, अपने हिये विचार ।
बजत तमूरा कहुँ सुने, गांठ गठींले तार ॥ ३६२ ॥
सब रंगन में नीर तुम, मिलकैं रंग सरसात ।
मीत प्रेम रंग से कहो, क्यों न्यारे ह्वै जात ॥ ३६३ ॥
रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥ ३६४ ॥
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीत ।
प्रानन बाजी राखिये, हार होय के जीत ॥ ३६५ ॥
जेहि रहीम तन मन मिलौ कियौ हिये बिच भौन ।
तासौं दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ ३६६ ॥
अगम पंथ है प्रेम को, जहां ठकुरई नाहिं ।
गोपिन के पीछें फिरें, त्रिभुवन पति बन माहिं ॥ ३६७ ॥
सज्जन सौं हित जोरिये, नित नित बढ़े हुलास ।
जामें जितनौं गुड़ परे, तामें तितौ मिठास ॥ ३६८ ॥
मित्र के काम कौं, देत विभव करि हेत ।
जैसे रवि निज तेज को, हरसि चन्द्रमहि देत ॥ ३६९ ॥
सजन बचावत कष्ट तें, दूरि हौंय कै साथ ।
नैन सहाई जो पलक, देह सहाई हाथ ॥ ३७० ॥

निरस बात सोई सरस, जहां होय हिय हेत ।
गारी हू प्यारी लगै, ज्यों ज्यों समधिन देत ॥ ३७१ ॥

कहा बड़े छोटे कहा, जहँ हित तहँ चित लागि ।
हरि भोजन किय विदुर घर, दुरयोधन को त्यागि ॥ ३७२ ॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥ ३७३ ॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट सदा मसान ।
जैसे खल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥ ३७४ ॥

मित्र के अवगुन मित्र कहुँ, पर पहँ भाखत नाहिं ।
कूप छांह जिमि आपनी, राखत आपुहि मांहि ॥ ३७५ ॥

बुरा प्रेम को मति कहौ, प्रेम अहै सुलतान ।
जिहि घट प्रेम न सञ्चरै, सो घट सदा मसान ॥ ३७६ ॥

दोऊ चाहैं मिलन कों, तो मिलाप निरधार ।
कबहूं नाहिन बाजि है, एक हाथ सों तार ॥ ३७७ ॥

प्रेमी प्रीति न छांड़ि हों, होत न अन ते हीन ।
मरै परे हू उदर सें, जल चाहत है मीन ॥ ३७८ ॥

ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आंक ।
कपटी जन की प्रीति ज्यों, नारङ्गी की फांक ॥ ३७९ ॥

प्रीति टुटे हू सुजन के, मन तें हेत छूटै न ।
कमल नाल कों तोरिये, तदपि सूत टूटै न ॥ ३८० ॥

अन्तर तनक न राखिये, जहां प्रेम व्यवहार ।
उर सौं उर लागै न तहँ, जहां रहतु है हार ॥ ३८१ ॥

ओछे नर के चित्त में, प्रेम न पूरो आय ।
जैसे सागर कौ सलिल, गागर में न समाय ॥ ३८२ ॥

अन भावन के मिलन कौ, सुख कौ नाहिन छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै, मोर सुनत घनघोर ॥ ३८३ ॥

जहां सुजन तँह प्रीति है, प्रीति तहां सुख ठौर।
जहां पुष्प तहँ बास है, जहां बास तहँ भौंर ॥ ३८४ ॥

छेदत काठ कठोर को, होत कमल में बंद।
आई मो मन भँवर की, इतनी बात पसंद ॥ ३८५ ॥

सज्जन कौं या जगत में, प्रीति दई प्रभु टेर।
कहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर ॥ ३८६ ॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, सो ही सांचे मीत ॥ ३८७ ॥

प्रेम मरमु जानैं कहा, विषयी कायर कूर।
इक सांच्यौ रण सूर ही, पहिचानतु रस मूर ॥ ३८८ ॥

हित जौमरु जानै कहा, यह मनोज मद चूर।
परखि पारखी ही सकै, प्रेम रत्न रण सूर ॥ ३८९ ॥

रे विषयी ! प्रेमी बनत, नैकु न लागति लाज।
केते कठिन कपोत व्रत, पालन हारे आज ? ३९० ॥

निर्विकार, निर्लेप, निति, निखिल ब्रह्म सुख सार।
सोइ प्रेम विषयी नु कों, भयो आजु खेलवार ॥ ३९१ ॥

जनि गनियौ खेलवार यों, कठिन प्रेम असि धार।
चातक मीन कपोत व्रत, कहँ अब पालन हार ॥ ३९२ ॥

प्रेम नेम जामें नहीं, तहां नहीं सुखधाम।
शांति शील शुचि ना जहां, नहीं राम को नाम ॥ ३९३ ॥

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठौ कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥ ३९४ ॥

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाय॥ ३९५॥

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघर प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥ ३९६॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान॥ ३९७॥

मन से कहां रहीम प्रभु, दृग सो कहां दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ विकान॥ ३९८॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गांठि पड़ जाय॥ ३९९॥

देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत।
प्राण तज्यौ प्रेम न तज्यौ, सूखो सरहि समेत॥ ४००।

धन्य सनेह कुरंग को, श्रवनन राच्यौ राग।
धरि न सकत पग पिछमनों, सर संमुख उर लाग॥ ४०१।

मैं तो झूमूँ प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जानैं कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विधि सोना होय॥ ४०२।

मधुरता और नम्रता:—

कबीर मीठे वचन ते, होत सबै सुख पूर।
जेहि नहीं सीखौ बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर॥ ४०३।

नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिङ्गार न सुहात॥ ४०४॥

फीकी पै नीकी लगै, कहिए समय विचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि॥ ४०५॥

भले बुरे सब एक से, जौ लौं बोलत नाँहि।
जान परतु है काक पिक, ऋतु बसंत के माहि ॥ ४०६ ॥

मधुर वचन तें जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनिक शीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान ॥ ४०७ ॥

रोस मिटै कैसे सहत, रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आगि में, कैसें आगि बुझात ॥ ४०८ ॥

विष हू ते कडुई लगै रिस में रस की भाख।
जैसे पित्त शरीन को, कड़वी लागत दाख ॥ ४०९ ॥

बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय।
एक वचन तैं रिस बढै, एक वचन तें जाय ॥ ४१० ॥

दोष भरी न उचारिए, जदपि यथारथ बात।
कहै अंध कों आंधरो, मानि बुरो सतरात ॥ ४११ ॥

इनकों मानुष जन्म दै, कहा कियो भगवान।
सुन्दर मुख कडुवे वचन, और सूम धनवान ॥ ४१२ ॥

भले लगें सबको रुचिर, स्वारथ युत हित बैन।
पिय आगम के काक बच, विरहिन कों सुख देन ॥ ४१३ ॥

जो जाकी रुचि की कहै, सो ताके अभिराम।
पिय आगम भाषी भलो, वायस पिक केहि काम ॥ ४१४ ॥

कोऊ है रुचि की कहै, हैं ताही सों हेत।
सबै उड़ावत काक कौं, पै विरहिन बलि देत ॥ ४१५ ॥

कहै रसीली बात सो, बिगरी लेत सुधारि।
सरस लौन की दाल में, ज्यों नीवू रस डारि ॥ ११६ ॥

मुनि मन सुथिर कुवात तें, कैसे राखै कोय।
जल प्रतिबिम्बित वात वस, थिर हू चंचल होय ॥ ४१७ ॥

चप चप चलती हीं रहै, नर लवार की जीह।
चल हल दल जैसे चपल, चलत रहे निसि दीह ॥ ४१८ ॥

हिये दुष्ट के वदन तें, मधुर न निकसै बात।
जैसे कड़ुई बेल के, को मीठे फल खात ॥ ४१६ ॥

रूखे वचन मिलाप में, कहत होत रस भङ्ग।
बीन बजत ज्यों तार के, टूटे रहत न रङ्ग ॥ ४२० ॥

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरन यह मंत्र है, तजदे वचन कठोर ॥ ४२१ ॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥ ४२२ ॥

भले भली ही कहत हैं, पै न कहत हैं दोष।
सूरदास कहे अंध कों, उपजावत है तोष ॥ ४२३ ॥

सब चाहें मधुरे वचन, को चाहत कटु बात।
दाखैं सबै भावैं कहौ, कौन निबौरी खात ॥ ४२४ ॥

सज्जन के प्रिय वचन तें, तनकी ताप मिटाय।
जैसे चंदन नीर ते, तन की तपन बुझाय ॥ ४२५ ॥

काहू कौं हँसिये नहीं, हँसी कलह की मूल।
हांसी ही तें ह्वै गयौ, कुल कौरव निरमूल ॥ ४२६ ॥

कबीर नवै सो आपको, परको नवै न कोय।
डालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय ॥ ४२७ ॥

स्वामी होनों सहज है, दुरलभ होनों दास।
गाडर पाली ऊन को, लागी चरन कपास ॥ ४२८ ॥

होनहार सहजान सब, विभव बीच नहिं होत।
गगन गिरह करिबै कबै, तुलसी पढ़त कपोत ॥ ४२६ ॥

वैर मूल कडुए वचन, प्रेम मूल उपकार ।
दोहा सरल सनेह मय, तुलसी कह्यो विचार ॥ ४३० ॥

यथा लाभ संतोष रत, गृह मग वन समरीति ।
ते तुलसी सुखमय सदा, जिन तन विभव विनीत ॥ ४३१ ॥

बातहि बातहि बनि पड़ै, बातहि बात नसाय ।
बातहि आदिहि दीप भो, बातहि अन्त बुझाय ॥ ४३२ ॥

बातहि ते बनि आवही, बातहिते बन जात ।
बातहि ते बरबर मिलत, बातहि ते बौरात ॥ ४३३ ॥

बात बिना अतिशय बिकल, बातहिते हरसात ।
बनत बात अरु बाततें, करत बात बर घात ॥ ४३४ ॥

तुलसी जाने बात बिनु, बिगरत हर एक बात ।
अनजाने दुख बात के, जानि परे कुसजात ॥ ४३५ ॥

प्रेम वैर अरु पुण्य अघ, जस अपजस जय हान ।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहि सुजान ॥ ४३६ ॥

धन अरु योवन को गरब, कबहूँ करिये नांह ।
देखत ही मिटि जात हैं, ज्यों बादर की छांह ॥ ४३७ ॥

अहंकार निवहै नहीं, पछतावहि सब कोय ।
दुर्योधन अभिमान तें, भये निधन कुल खोय ॥ ४३८ ॥

जब लगि जोगी जगतगुरु, तब लगि रहैं निरास ।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु जोगी दास ॥ ४३९ ॥

रहिमन कबहु बड़ेन को, नाहिं गर्ब को लेस ।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत शेस ॥ ४४० ॥

रोसन रसना खोलिए, बरु खोलिय तलवार ।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय वचन विचार ॥ ४४१ ॥

सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसांई महीप ।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप ॥ ४४२ ॥

कबिरा गर्व न कीजिये, अस जीवन की आस ।
टेसू फूले दिवस दस, खंखर भया पलास ॥ ४४३ ॥

कर्तव्य की प्रधानता—

तुलसी कुपथ लीन्हे जनित, ए‍ स्वभाव अनुसार ।
तुलसी सिखवत नाहिं शिसु, मूसक हनत मजार ॥ ४४४ ॥

तुलसी जो करता करम, सो भोगत नहिं आन ।
जो बोवै सो काटिए, देनी लहइ निदान ॥ ४४५ ॥

रावन रावन को हनेउ, दोष राम को नाहिं ।
निज हित अनहित देखु किन, तुलसी आपुहि मांहि ॥ ४४६ ॥

आपुहि मद को पान कर, आपुहि होत अचेत ।
तुलसी विविधि प्रकार को; दुख उतपति एहि हेत ॥ ४४७ ॥

देस, काल, करता, करम, बुधि विद्या गति हीन ।
ते सुर तरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ॥ ४४८ ॥

वर्तमान आधीन दोउ, भावी भूत विचार ।
तुलसी संसय मन न करु, जो है सो निरुवार ॥ ४४९ ॥

निशदिन करतब कर्म करु, जग में कर्म प्रधान ।
तुलसी ना लखि पाइयो, किये अमित अनुमान ॥ ४५० ॥

आपनो करतब आपु लखि, सुनि गुनि आपु विचारि ।
अन्य न कोऊ दुख दै सकै, सुखदा सुमति अधार ॥ ४५० ॥

सांई मेरे बानियां, सहज करैं व्योपार ।
बिन डंडी बिन पालड़े, तोलै सब संसार ॥ ४५१ ॥

रूप नहीं जग देखता, जो नर हो गुन वान ।
कृष्ण हुए काले तदपि, करता जग सन्मान ॥ ४५२ ॥

ऊँचे कुल क्या जन्मिया, जो करनी ऊँच न होय ।
सुवरन कलस सुराभरी, सो धूनिदे सोय ॥ ४५३ ॥

कोऊ न सुख दुख देत है, देत करम झकझोर ।
उरझै सुरझै आपही, ध्वजा पवन के जोर ॥ ४५४ ॥

जो जैसी करनी करै, सो तेहि लहै न और ।
बनिज करै सो बानियां, चोरी करै सो चोर ॥ ४५४ ॥

प्रापति सो तैसो करै, जाको यथा स्वभाय ।
भाजन मित भरि सरित, ते जल भरि भरि लै जाय ॥ ४५५ ॥

पंकज उपजै पंक में, सौरभ अति सुखकार ।
होत महत्व न जन्म को, गुण कारण सु विचार ॥ ४५६ ॥

है मनुष्य की देह में, वैसा एक रहस्य ।
शत्रु मित्र हैं संग ही, श्रम एवं आलस्य ॥ ४५६ ॥

तुलसी हरि दरबार में, कमी वस्तु कछु नाहि ।
कर्म हीन कलपत फिरत, चूक चाकरी मांहि ॥ ४५७ ॥
कार्य करे नहिं दोष भय, कायर की पहिचान ।
भोजन तजता कौन जन, अन पच कर उर मान ॥ ४५८ ॥

यत्न बिना कैसे मिले, कोई वस्तु नवीन ।
बिना यत्न पाता नहीं, तिल मे तेल प्रवीन ॥ ४५९ ॥

सबै कहावै लसकरी, सब लसकर महँ जाय ।
रहिमन सेल जोई सहै, सोई जागीरै खाय ॥ ४६० ॥

निज कृत दुष्कृति स्कृति का, फल पाते सब लोग ।
जैसा जिसका कर्म है, वैसा ही फल भोग ॥ ४६१ ॥

कठिन कला हू आइ है, करत करत अभ्यास ।
नट ज्यों चालतु बरत पर, साधि बरस छै मास ॥ ४६२ ॥

परी विपत तें छूटिये, करिये जोर उपाव ।
कैसे निकसै विनु जतन, परी भौर में नाव ॥ ४६३ ॥

विना प्रयत्न न होत है, कारज सिद्ध निदान ।
चढ़ै धनुष हू ना चलै, विना चलाये वान ॥ ४६४ ॥

जेहि जेतौ उनमान तेहि, तेतौ रिजक मिलाय ।
कन चींटी, कूकर टुकर, मन भर हाथी खाय ॥ ४६५ ॥

बहु गुन श्रम तें उच्च पद तनिक दोष तें पात ।
नीठ चढै ऊपर सिला टारत ही गिरि जात ॥ ४६६ ॥

जोरावर हू को कियौ, विधि बस करन इलाज ।
दीप तमहिं अंकुश गजहि, जलनिधि तरनि इलाज ॥ ४६७ ॥

खाली तजि पूरन पुरुष, जेहि सब आदर देत ।
रीतौ कुआ उसारिये, ऐंच भर्यौ घट लेत ॥ ४६८ ॥

चलै जु पंथ पिपीलका, पहुंचै सागर पार ।
आलस में बड़ो गरुड़, पडौ रहे मन मार ॥ ४६९ ॥

एक एक अक्षर पढ़ें, जानें ग्रन्थ विचार ।
पैंड पैंड हू चलत जो, पहुंचत कोस हजार ॥ ४७० ॥

हलन चलन की शक्ति है, तो लौं उद्यम ठानि ।
ज्यों अजगर मृगपति वदन, परतु नहीं मृग आनि ॥ ४७१ ॥

विद्या धन उद्यम विना, कहौ जु पावै कौन ।
विना डुलाये ना मिले, ज्यों पङ्खा की पौन ॥ ४७२ ॥

जाकी ओर न जाइये, कैसे मिलि है सोय ।
जैसे पच्छिम दिसि गये, पूरब काज न होइ ॥ ४७३ ॥

कन कन जोरे मन जुरै, खाते निवरै सोय।
बूंद बूंद सों घट भरै, टपकत बीते तोय॥ ४७४॥

दुख पाये विन हूँ कहूं, गुन पावत है कोइ।
सहैं बेध बंधन सुमन, तब गुन संयुत होइ॥ ४७५॥

उद्यम कबहुँ न छांडिये, पर आसा के मोद।
गागरि कैसे फोरिये, उमड्यो देखि पयोद॥ ४७६॥

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचौ नीर॥ ४७७॥

जो पहले कीजै जतन, सो पीछे फल दाय।
आग लगे खोदै कुंवा, कैसे आग बुझाय॥ ४७८॥

श्रम ही तें सब मिलत है, विनु श्रम मिलै न काहि।
सीधी अंगुरी घी जम्यो, क्यों हू निकरै नाहि॥ ४७९॥

गुन वारौ संपति लहै, विनगुन लहै न कोय।
काढै नीर पताल तें, जो गुन युत घट होय॥ ४८०॥

उद्दिम बुधि बल सों मिलै, तब पावत सुख साज।
अंध कंध चढ़ि पंगु ज्यों, सबै सुधारत काज॥ ४८१॥

श्रम और बुद्धि प्रभाव तें, लक्ष्मी करत निवास।
ज्यों लों तेल प्रदीप में, तौ लौं ज्योति प्रकास॥ ४८२॥

वीर पराक्रम तें करै, भुव मंडल में राज।
जोरावर यातें करत, वन अपनो मृगराज॥ ४८३॥

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निसान॥ ४८४॥

को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर।
उरझै सुरझै आप ही, ध्वजा पवन के जोर॥ ४८५॥

सबल न पुष्ट शरीर सो, सबल तेज युत होय।
हृष्ट पुष्ट गज दुष्ट सो, अंकुश के बस होय ॥ ४८६ ॥

विद्या बिना प्रयोग के, बिसरत इहि अनुमान।
बिगर जात बिन खबर के, ज्यों ढोली के पान ॥ ४८७ ॥

शूरवीर—

टेढ़ जानि शंका सबहि, है न असांची बात।
सरल भये दिन रात जो, पावहि गारी लात ॥ ४८८ ॥

ताही कों सब नवत हैं, जो जन टेढ़ो होइ।
नमत दुतीया चंद कों, पूरन चन्द न कोइ ॥ ४८९ ॥

बहुत भये केहि काम के, भलो वीर जो एक।
शेष धरै सिर पै धरनि, मेंढक भखौ अनेक ॥ ४९० ॥

बिना तेज के पुरुष कों, अवसि अवज्ञा होय।
आगि बुझे ज्यों राखकों, आनि छुवै सब कोय ॥ ४९१ ॥

तन धन हू दै लाज के, जतन करत जे धीर।
टूक टूक ह्वै गिरत पै, नहिं मुख फेरत वीर ॥ ४९२ ॥

आवतु आपु बिनासु तहँ, जहँ बिलसतु सु बिलासु।
एक प्राण ह्वै देह मनु, उभय बिलासु बिनासु ॥ ४९३ ॥

जित देखौ तित बाढ़ रहै, कुल कुठार भुंव भार।
क्यों न होत पुनि आजु तह, परशुराम अवतार ॥ ४९४ ॥

बनत क्रोध जित निबल नर, धारि क्षमा अभिराम।
करत कलंकित क्लीब ज्यों, ब्रह्मचर्य व्रत नाम ॥ ४९५ ॥

कबहू रन बिमुखी भयौ, बउ फिर लरै सिपाह।
कहा भयौ काहू लखै, भाग्यौ तऊ बराह ॥ ४९६ ॥

जे न होयँ दृढ़ चित्त के, तहां न निवहै टेक ।
ज्यों कच्चे घट में सलिल, नहिं ठहरत दिन एक ॥ ४६७ ॥

खंड खंड है जाय वरु, देतु न पाछैं पैंड़ ।
लरत सूरमा खेत की, मरत न छांड़तु मेंड़ ॥ ४६८ ॥

खल खंडन, मंडन सुजन, सरल, सुहृद, स विवेक ।
गुण गँभीर रण सूरमा, मिलतु लाख महँ एक ॥ ४६९ ॥

आज कहूं तौ काल्हि कहुँ, नाहिं एक विश्राम ।
करतु सिंह सम सूरमा, ठौर ठौर निज ठाम ॥ ५०० ॥

तंत न तोरत अंत लौं, बचन निबाहत सूर ।
कहा प्रतिज्ञा पालि हैं, कपटी कादर क्रूर ॥ ५०१ ॥

वेंचि प्रियै, प्रिय पूतहू, भयो डोम गृह दास ।
सत्यसिंध हरिचन्द तू, सहज स सत्य प्रकाश ॥ ५०२ ॥

सुर तरु लै कीजै कहा अरु चिन्तामणि ढेरु ।
इक दधीचि की अस्थि पै, वारिय कोटि सुमेरु ॥ ५०३ ॥

सहज बजावतु गाल त्यौं, सहज फुलावत गाल ।
काल गाल में रिपु दलै, कठिन गेरिबो हाल ॥ ५०४ ॥

प्रकृति वीर कौ अंत हू, परतु मन्द नहिं तेज ।
नहिं चाहत चन्दन चिता, छांडि भीष्म शर सेज ॥ ५०५ ॥

क्षत्रिय क्षत्रिय कहे तें, क्षत्रिय होय न कोय ।
सीस चढ़ावै खड्ग पै, क्षत्रिय सोई होय ॥ ५०६ ॥

जोरि नाम संग सिंह पद किया सिंह बदनाम ।
है हैं क्यों करि सिंह यों, करि शृगाल कौ काम ॥ ५०७ ॥

अरे फिरत कत बावरे, भटकत तीरथ भूरि ।
अजौं न धारत सीस पै, सहज सूर पग धूरि ॥ ५०८ ॥

जे जन लोभी सीस के, ते अधीन दिन दीन ।
सीस चढ़ाये विन भयौ, कहो कौन स्वाधीन ॥ ५०९ ।

पराधीन सबु देखियतु, बल बीरन तें हीन ।
या कानन में केहरी, इक तू ही स्वाधीन ॥ ५१० ।

जाय फुटि रति रंग रली, अलसौहीं वह आंख ।
सहज ओज ज्वाला ज्वलित, चिरजीवौ जुग लाख ॥ ५११ ।

भर्यौ रक्त नहि, जिन दृगनि देखि आत्म अपमान ।
क्यों न विधे तिन में विधे ! शूल विषम विषबान ॥ ५१२ ।

लखि सतीत्व अपमान हूँ, भये न जे दृगलाल ।
नीबू नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥ ५१३ ॥

देखि दीन दुर्बलन कूं, दहत न जाके अंग ।
ता कुचालि को भूलि हू, कबहु न कीजै संग ॥ ५१४ ॥

भये न जो पढ़ि सत्य ब्रत, सबल शूर स्वाधीन ।
तौ विद्या लगि बादि धन, समय शक्ति व्यय कीन ॥ ५१५ ॥

रहै मान धन यत्न सों, जहँ बांकी तरवार ।
सो फल कोउ न लै सके, जहां कटीली डार ॥ ५१६ ॥

तज हैं मरद न मेंड निज, रहैं वकत बदराह ।
करत न कूकर वृन्द की, कछु गयन्द परवाह ॥ ५१७ ॥

शूर न चूकत दांव निज, क्रूर बजावत गाल ।
दोनों चक्र चलाय हरि, बकत रह्यौ शिशुपाल ॥ ५१८ ॥

चलत महाजन जा सुपथ, सो अनुसरत जहान ।
धन्य युवक जो आप ही, करैं स्वपथ निर्मान ॥ ५१९ ॥

डरै न काहू दुष्ट सों, लरै लोभ तनु खोय ।
करै न शंका काल की, युवक सराहिय सोय ॥ ५२० ॥

शूर सोइ पहचानिए, लरे दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै, कबहु न छांडे खेत॥ ५२१॥

नहिं चाहों साम्राज्य सुख, नाहिं स्वर्ग निर्वान।
जन्म जन्म निज धर्म पैं, हरषि चढ़ावों प्रान॥ ५२२॥

कुसंग और कुबुद्धि—

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति चलाय।
जैसे छीछर ताल जल, घटत घटत घट जाय॥ ५२३॥

दुर्जन के संसर्ग तें, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध तें, बंधन लह्यो जलेस॥ ५२४॥

दोषहि को उमहैं गहै, गुन न गहैं खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक॥ ५२५॥

भेष बनावै सूर को, कायर सूर न होय।
खाल उढ़ावैं सिंह की, स्यार सिंह नहि होय॥ ५२६॥

दुष्ट संग बसिये नहीं, असि न कीजिये बात।
कदली बेर प्रसंग तें, छिदै कंटकन पात॥ ५२७॥

नीच निचाई नहिं तजइ, जो पावै सतसंग।
तुलसी चंदन विटप बसि, विष नहिं तजत भुजंग॥ ५२८॥

दुरजन दरपन सम सदा, करि देखो हिय ग़ौर।
सनमुख की गति और है, पीछे की गति और॥ ५२९॥

जो मूरख उपदेश के होते जोग जहान।
दुर्योधन कहं बोधि किन, आये स्याम सुजान॥ ५३०॥

तुलसी निज कीरति चहहि, परकीरति को खोय।
तिनके मुँह मसि लागि है, मिटहि न मरिये धोय॥ ५३१॥

नीच चंग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास ।
ढील देत भुँइ गिर परत, खेंचत चढ़त अकास ॥ ५३२ ॥

बैठति इक पग ध्यान धरि, मीनन कों दुख देत ।
बक मुख कारे हो गये, रसनिध याही हेत ॥ ५३३ ॥

कछु कहि नीच न छेड़िये, भलौ न वाको संग ।
पत्थर डारे कीच में उछरि बिगारै अंग ॥ ५३४ ॥

खाय न खरचै सूम धन, चोर सवै ले जात ।
पीछें ज्यों मधु मच्छिका, हाथ मले पछतात ॥ ५३५ ॥

दुष्ट रहे जा ठौर पै, ताको करै बिगार ।
आगि जहां ही राखिये, जारि करै तेहि छार ॥ ५३६ ॥

देखत कौ सुन्दर लगें, उर में कपट विषाद ।
इन्द्रायन के फलन सम, भीतर कटुक सवाद ॥ ५३७ ॥

मूरख को हित के बचन, सुनि उपजत है कोप ।
सांपहि दूध पिवाइये, बाढे मुख विष ओप ॥ ५३८ ॥

कहा करै गम निगम, जो मूरख समुझै न ।
दरपन को नहि दोष कछु, अंध बदन देखै न ॥ ५३९ ॥

बढ़ै पै सीझै नही, रहिमन नीर पखान ।
बूझै पै सूझै नहीं, तैसे मूरख मान ॥ ५४० ॥

कबहुं दिवस महं निविड़ तम, कबहुक प्रकट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाई कुसंग सुसंग ॥ ५४१ ॥

भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे विचार ।
भवन बनावत दिन लगैं, ढाहत लगत न बार ॥ ५४२ ॥

सीत हरत तम बरत नित, भुवन भरत नहिं चूक ।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ ५४३ ॥

रहिमन तजहु अँगार ज्यों, ओछे जन को संग।
सीरे पै कारौ लगै, तातौ जारे अंग ॥ ५४४ ॥

जो रहीम ओछौ बड़ौ सो अति ही इतराय।
प्यादे तें फरजी भये, टेढ़ो टेढो जाय ॥ ५४५ ॥

खीरा कौ मुँह काटिये, मलिये नौन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन को, चहिये यही सजाय ॥ ५४६ ॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन करि, स्वान स्वाद सों खात ॥ ५४७ ॥

रहि॰ ओछे नरन सों, वैर भलौ ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के दोऊ भांति विपरीत ॥ ५४८ ॥

नीति—

सुन्दर थान न छोड़िये, ज्यों लों होय न और।
पिछलौ पांव उठाइये, देखि धरन को ठौर ॥ ५४९ ॥

सुनिये सबकी पर वही, करिये जो चित होय।
सोंह दिवाये और के, परे अग्नि नहि कोय ॥ ५५० ॥

चहल पहल अवसर परे, लोक रहत घर घेर।
ते फिर दृष्टि न आवहीं, जैसे फसल बटेर ॥ ५५१ ॥

निबहै सोई कीजिये, पन अपने उनमान।
कैसे होत गरीब पैं, राजा जैसो दान ॥ ५५२ ॥

होय भले चाकरन तें, भलौ धनी कौ काम।
ज्यों अंगद हनूमान तें, सीता पाई राम ॥ ५५३ ॥

कारज सोई सुधरि है, जो करिये समभाय।
अति बरसै बरसै बिना, ज्यों खेती कुम्हलाय ॥ ५५४ ॥

होत न कारज मो विना, यह जु कहे सु अयान।
जहां न कुक्कट शब्द तहँ, होत न कहा विहान ॥ ५५५ ॥

सव को रस में राखिये, अति अति करिये नाहिं।
विष निकस्यो अति मथन तैं, रतनाकर ही मांहि ॥ ५५६ ॥

और छोटो जानिये नहीं, जाते होत विगार।
वड़े विपन कों छिनक में, जारत तनक अंगार ॥ ५५७ ॥

गुन तें संग्रह सव करैं, कुल न विचारै कोय।
हरि हू मृग मद को तिलक, करत लेत जग सोय ॥ ५५८ ॥

हरत दैवहू निवल अरु, दुरवल के ही प्रान।
वाव सिंह को छाड़ि कैं, देत छाग वलिदान ॥ ५५९ ॥

वड़े कहैं सो कीजिये, करैं सु करिये नाहिं।
शंभु अशुचि वन वन फिरैं, और विक्षिप्त कहाहिं ॥ ५६० ॥

गुनी तऊ अवसर विना, आग्रह करै न कोय।
हिय तें हार उतारिये, सयन समय जव होय ॥ ५६१ ॥

कहा करै कोऊ जतन, प्रकृति न वदलै जोइ।
सानै सदा सनेह में, जीभ न चिक्नी होइ ॥ ५६२ ॥

काम परे ही जानिए, जो नर जैसो होय।
विन ताये खोटौ खरौ, गहनौ लखै न कोय ॥ ५६३ ॥

विपति परे सुख पाइए, ता ढिग करिए भौन।
नैन सहाई वधिर के, अन्ध सहाई स्रौन ॥ ५६४ ॥

क्यों करिये प्रापति अलप, जामें श्रम अति होइ।
कौन जु गिरिवर खोदि कें, चूहौ काढै जोइ ॥ ५६५ ॥

कलुष भाव देखै जहां, उत्तम जन न रहाय।
ऐसे पावस तजि अनत, राजहंस उड़ि जांय ॥ ५६६ ॥

खल सो कहिय न गूढ़ तत, होहि कतहु अति मेल ।
यों फैले जग मांहि ज्यों, जल पर बूंद कि तेल ॥ ५६७ ॥

बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुए बैन ।
लात खाय पुचकारिए, होइ दुधारु धेन ॥ ५६८ ॥

धन संच्यौ किहि काम कौ, खाए, खरच, हरि प्रीति ।
बंध्यौ गंधीलौ कूप जल, कढै, बढै, इहि रीति ॥ ५६९ ॥

अति ही सरल न हूजिए, देखौ ज्यों वन राय ।
सीधे सीधे काटिये, बांके तरु बांच जाय ॥ ५७० ॥

बहुतन कों न विरोधिये, निबल जानि बलवान ।
मिलि भखि जांय पिपीलका, नागहि नगे के मान ॥ ५७१ ॥

बहुत निबल मिलि बल करें, करें जु चांहे सोय ।
तिनकन की रसरी करी, गज को बंधन होय ॥ ५७२ ॥

मिथ्या भाषी सांच हू, कहै न मानै कोय ।
भांड पुकारै पीर पर, मिस समुझै सब कोय ॥ ५७३ ॥

अपने अपने ठौर पै, शोभा लहत विशेख ।
चरन महावर ही भलौ, नैनन अंजन रेख ॥ ५७४ ॥

अपनी अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर ।
विन गरजै बोलै नहीं, गिरिवर हू कौ मोर ॥ ५७५ ॥

सो समझे जा बात कौं, सो तिहि कहै विचार ।
रोग न जानें ज्योतिषी, वैद्य ग्रहन कौ चार ॥ ५७६ ॥

सुख बीते दुख होत है, दुख बीते सुख होत ।
दिवस गये ज्यों निसि उदित, निसि गत दिवस उदोत ॥ ५७७ ॥

घटति बढ़ति संपति सुमति, गति अरहट्टिय जोय ।
रीती घटिका भरति है, भरी सु रीती होय ॥ ५७८ ॥

आयु बुरे जग है बुरौ, भलौ भले जग जानि ।
तजत बेर की छांह सब, गहत आंब की आनि ॥ ५७९ ॥

भले बुरे जहँ एक से, तहां न बसिए जाय ।
ज्यों अंधेर नगरी बिकैं, खरि गुर एकै भाय ॥ ५८० ॥

न करि नाम रंग देखि सम, गुन बिन समझे बात ।
गात घात गौ दूध तें, सेँहुड़ केतें घात ॥ ५८१ ॥

बिना ज्ञान गुनके लखे, मानु न करि मनुहारि ।
ठगत फिरत सब जगत को, भेष भक्त कौ धारि ॥ ५८२ ॥

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आगि कौं, दीपहि देत बुझाय ॥ ५८३ ॥

अति हठ मति करि, हठ बढे बात न करिहै तोय ।
ज्यों ज्यों भीजे कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥ ५८४ ॥

लालच हू ऐसो भलो, जासों पूरै आस ।
चाटेहू कहुँ ओस के, मिटै काहु की प्यास ॥ ५८५ ॥

धन बल जन बल बाहु बल, नहिं काहू के घाट ।
एकहि एका बल बिना, सब बल बाराबाट ॥ ५८६ ॥

जग की सुख सम्पत्ति को, मिलौ न वारापार ।
धन हीनन के हेतु ही, है संसार असार ॥ ५८७ ॥

वित्तवान गुनवान है, वित्त हीन गुन हीन ।
महिमा वित्त समान कहुँ, काहू की देखीन ॥ ५८८ ॥

ज्ञानी ध्यानी योग रत, विद्या बुद्धि प्रवीन ।
बात न पूछे तात हू, है यदि वित्त विहीन ॥ ५८९ ॥

सहि असंख्य दारुन दुखन, बरु लीजै बनवास ।
बंधु ! न कीजै बंधु संग, वित्त विहीन निवास ॥ ५९० ॥

जानि बूझि अजगुत करै, तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहै, तेहि को सकै जगाय॥ ५६१॥

मौन खड्ग लीने रहै, खल की कहा बसाय।
अगिनि परी तृन रहित थल, आपुहिते बुझि जाय॥ ५६२॥

सेवक साहिब के बढ़े, बढ़ै बड़ाई ओज।
जेतौ गहरौ जल बढ़े, तेतौ बढै सरोज॥ ५६३॥

तृन हू ते अरु तूल तें, हलको याचक आहि।
जानत है कछु माग है, पवन उड़ावत नाहिं॥ ५६४॥

नृप, गुरु, तिय, जल, अग्नि को मध्य सेइये जाय।
है बिनास अति निकट तें, दूर रहे फल नाय॥ ५६५॥

ओछी मति युवतीन की, कहैं विवेक भुलाय।
दशरथ रानी के वचन, वन पठये रघुराय॥ ५६६॥

जो जेह कारज में कुसल, सो तेह भेद प्रवीन।
नद प्रवाह में गज बहै, उलटि चलै लघु मीन॥ ५६७॥

होत अधिक गुन निवल पै, उपजत बैर निदान।
मृग मृग मद चमरी चमर, लेत दुष्ट हत प्रान॥ ५६८॥

कै समसों कै अधिक सों, लरिये करिये वाद।
हारे जीते होत है, दोऊ भांति संवाद॥ ५६६॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत घाम औ मेह॥ ६००॥

रूठे सुजन मनाइए, जो रूठे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइये, टूटे मुक्ता हार॥ ६०१॥

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैये भागि।
ठाढ़े हूजिय घूर पर, जब घर लागत आगि॥ ६०२॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अँखियां निरखि, आंखिन कों सुख होत ॥ ६०३ ॥

रहिमन रहिये तबहिलौं, जौ लौं सील समूच ।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिये कूच ॥ ६०४ ॥

रहिमन अरहर की भली, जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय ॥ ६०५ ॥

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय ।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥ ६०६ ॥

रहिमन चाक कुम्हार को, मांगे दिया न देइ ।
छेद में डंडा डारि कैं, चहैं नांद लै लेइ ॥ ६०७ ॥

रहिमन ओछे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम ।
मढ़ौ नँगाड़ौ जाय नहिं, सौ चूहे के चाम ॥ ६०८ ॥

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय ।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदगं स्वर देय ॥ ६०९ ॥

छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख ।
सहसन को हय बांधियत, लै दमरी की मेख ॥ ६१० ॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिन हित होय ॥ ६११ ॥

बुरे लगत सिख के बचन, हिये विचारै आप ।
कडुई भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ॥ ६१२ ॥

फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजे ब्यापार ।
जैसी हांड़ी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥ ६१३ ॥

करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान ।
वा सोने को जारिये, जासों टूटैं कान ॥ ६१४ ॥

सो संपति केहि काम की, जनि काहू पै होय।
आपु कमावै कष्ट करि, विलसै औरहि कोय ॥ ६१५ ॥

नर भूषण सब दिन क्षमा, विक्रम अरि के घेर।
ज्यों तिय भूषण लाज है, निलज सुरति की बेर ॥ ६१६ ॥

लालन करता मात सम, पालन पिता समान।
लाल बनाती देह को, विद्या सब सुख खान ॥ ६१७ ॥

घर को घर कहते नहीं, घरनी ही घर जान।
घरनी बिना मसान सम, घर जानो मति मान ॥ ६१८ ॥

रहिमन बिगरी बात फिर, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावने नाम ॥ ६१९ ॥

संपति संपति जानि कै, सबको सब कोई देत।
दीन बन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥ ६२० ॥

उरग, तुरग, नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिये, पलटत लगै न बार ॥ ६२१ ॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन सींचो मूल को, फूलहि फलहि अघाय ॥ ६२२ ॥

को चाहैं अपनों तऊ, जा संग लहिये पीर।
जैसे रोग शरीर तें, उपजत दहत शरीर ॥ ६२३ ॥

एक बिरानों ही भलो, जेहि सुख होत सरीर।
जैसे बन की औषधी, हरत रोग की पीर ॥ ६२४ ॥

तुलसी झगड़े बडेन के, बीच परहु जनि धाय।
लड़ें लोह पाहन तऊ, बीच रुई जरि जाय ॥ ६२५ ॥

कलह न जानब छोटि करि, कठिन परम परिनाम।
लगत अनल लघु नीच घर, जरत धनिक धन धाम ॥ ६२६ ॥

दान दीन को दीजिये, मिटै दरिद की पीर।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥ ६२७ ॥

उत्तम विद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय।
परयो अपावन ठौर में, कंचन तजत न कोय ॥ ६२८ ॥

जाही तें कछु पाइये, जइये ताके पास।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ ६२९ ॥

गुन ही तेऊ मनाइये, जो जीवन सुख भौन।
आगि जरावत नगर तउ, आगि न लावत कौन ॥ ६३० ॥

ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम ॥ ६३१ ॥

होय न जाकी छांह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़े वृथा बिन काज ही, जैसे ताड़ खजूर ॥ ६३२ ॥

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूपते काढ़ि।
कूपहुँ ते कछु होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥ ६३३ ॥

भूखे भजन न होत है, नहीं सुहावै राग।
पेट भरे पै लगत है, सबको नीको फाग ॥ ६३४ ॥

सब आपद की आपदा है निर्धनता एक।
इससे धन अर्जित करो, जितो विपत्ति अनेक ॥ ६३५ ॥

यों निवाह सब जगत को, रस रिस हेत अहेत।
एक एक पै लेत है, एक एक को देत ॥ ६३६ ॥

शिष्य, सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावत सांच।
समुझि करिय जनि परिहरिय लोग हंसावें पांच ॥ ६६७ ॥

रहिमन अति नहिं कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सहजन अति फूलै तऊ, डार पात की हानि ॥ ६३८ ॥

एक एक सौं लगि रह्यो, अन्नोदक संबधं।
चोली दामन ज्यों रच्यौ, जगत जंजीरा बंध ॥ ६३९ ॥

बरु रहीम कानन भलौ, बास करिए फल भोग।
बन्धु मध्य धन हीन है, बसिबो उचित न जोग ॥ ६४० ॥

नृपति चोर जल अनल सब, धनिकन ही दुख देत।
जल थल नभ में मांस को, मछ केहरि खग लेत ॥ ६४१ ॥

काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भांवरि के परे, नदी सिरावत मौर ॥ ६४२ ॥

रहिमन देख बड़े न को, लघुन दीजिये डारि।
जहां काम आवै सुई, कहा करै तरवार ॥ ६४३ ॥

दैबो अवसर को भलौ, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥ ६४४ ॥

अपनी पहुंच बिचारि कै, करतब करिए दौर।
तेते पांव पसारिये, जेती लम्बी सौर ॥ ६४५ ॥

हृदय जीत सी जीत नहिं, भरम भीति सी भीति।
धर्म नीति सी नीति नहिं, कृष्ण प्रीति सी प्रीति ॥ ६४६ ॥

लोक व्यवहार—

प्रेमी अवगुन ना गनै, यही जगत की चाल।
देखौ सबही श्याम कों, कहत बाल सब लाल ॥ ६४७ ॥

जो जाकों प्यारो लगै, सो तेहि करत बखान।
जैसे विष कों विष भखी, मानत अमृत समान ॥ ६४८ ॥

जो जाकौ गुन जानही, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अम्बहि लेत है, काग निबौरी लेत ॥ ६४९ ॥

पिशुन छल्यौ नर सुजन को करत विसास न चूकि ।
जैसे दाझौ दूध को, पीवत छाछहि फूँक ॥ ६५० ॥

नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत ।
जैसे निरमल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ ६५१ ॥

अति परिचय तें होत है, अरुचि, अनादर भाय ।
मलियागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ॥ ६५२ ॥

सो ताके अवगुन कहै, जो जेहि चाहै नाहिं ।
तपत कलंकी विष भर्‌यौ, विरहिन शशिहि कहाहि ॥ ६५३ ॥

जासों जैसो भाव सो, तैसो ठानत ताहि ।
शशिहि सुधाकर कहत कोउ, कहत कलंकी आहि ॥ ६५४ ॥

रहिमन कठिन चितान तें, चिंता को चित चेत ।
चिता मरे को दहति है, चिंता जीव समेत ॥ ६५५ ॥

कहिवौ कछु करिवौ कछू, है जग की विधि दोय ।
देखन के और खान के, अलग दन्त गज होंय ॥ ६५६ ॥

अपनी प्रभुता को सबै, बोलत झूठ बताय ।
वेश्या बरस घटावही, जोगी बरस बढ़ाय ॥ ६५७ ॥

मीठी कोऊ वस्तु नहिं, मीठी जाकी चाह ।
रोगी मिसरी छोड़ कै, खात गिलोय सराहि ॥ ६५८ ॥

निबल सबल के संग ते, सबलन सों अनखात ।
देति हिमायत की गधी, ऐरावत को लात ॥ ६५६ ॥

दोष लगावत गुनिन कों, जाकौ हृदय मलीन ।
धरमी को दंभी कहैं, छमियन को बलहीन ॥ ६६० ॥

एक एक कौ शत्रु है, जो जाते बलवन्त ।
जलहि अनल, अनलहि पवन, सरप जु पवन भखंत ॥ ६६१ ॥

भले भले विधना रचे पै. सदोष सब कीन।
कामधेनु पसु, कठिन मनि, दधि खारो, सीस छीन॥ ६६२॥

ताको त्यों समझाइए, जो समझै जेहि हेत।
पानी द्वारा अंध को, बहिरे को संकेत॥ ६६३॥

सब देखें पर दोष को, अपुन न देखे कोय।
करै उजेरौ दीप पै, तरे अँधेरौ होइ॥ ६६४॥

अपनी कीरति कान सुनि, होत न को खुस्याल।
नाग मंत्र को सुनत ही, विष छांड़त है व्याल॥ ६६५॥

ओछे जनके पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, सेर कभी न समात॥ ६६६॥

अवगुन करता और ही, देत और को मार।
चल्यौ नहीं दश शंभुसों, जारत विरहिन मार॥ ६६७॥

कूट नीति—

वीर पराक्रम ना करै, तासों डरत न कोइ।
बालक हू कौं, चित्र कौ, बाघ खिलौना होइ॥ ६६९॥

छल बल, धर्म अधर्म करि, अरि नासिए अभीति।
भारत में अर्जुन किसन, कहा करी युधनीति॥ ६७०॥

सुख दिखाय दुख दीजिये, खल सों लरिये नाहिं।
जो गुड़ दीने ही मरै, क्यों विष दीजै ताहि॥ ६७१॥

बहुत न बकिये, कीजिए, कारज अवसर पाय।
मौन गहे वक दांव पर, मछरी लेत उठाय॥ ६७२॥

झूठे हू करिये जतन, कारज बिगरै नाहिं।
कपट पुरुष धन खेत पर, देखत मृग भजि जांहि॥ ६७३॥

झूठ बिना फीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन ।
झूठ तितौ ही बोलिये, ज्यों आटे में नौन ॥ ६७४ ॥
ठौर देखि के हूजिए, कुटिल सरल गति आप ।
बाहर टेढ़ा फिरत है, बांमी सूधो सांप ॥ ६७५ ॥
छोटे अरि को साधिके, छोटौ करि उपचार ।
मरै न मूसा सिंह तें, मारै ताहि मजार ॥ ६७६ ॥
गूढ़ मंत्र तौ लौं रहै, जौ लौं जानैं दोय ।
परै पांचवे कान में, जानि जात सब कोय ॥ ६७७ ॥
समय परे ओछे वचन, सबके सहे रहीम ।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥ ६७८ ॥
रहिमन निज मनकी व्यथा, मनही रखिये गोय ।
सुन इठलैहैं लोग सब, बांट न लैहैं कोय ॥ ६७९ ॥
संपति भरम गंवाइकै, हाथ रहत कछु नांहि ।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहि मांहि ॥ ६८० ॥

सामयिक दुरवस्था—

जा जग की रोटीन तें, सूझत अलख अनंत ।
मिथ्या ताको कहत ए, निलज निठल्ले संत ॥ ६८१ ॥
फिरत वृथा चिमटा धरैं, अंग कुढंग बनाय ।
तिन तें तौ शूकर भले, थल शोधहि मलखाय ॥ ६८२ ॥
वे सुरभी सुख दायिनी, कामधेनु धन खान ।
आह ! घटे जिनके कटे, जन जीवन तन प्रान ॥ ६८३ ॥
दंभ दिखावत धर्म कौ, यह अधीन मति अंध ।
पराधीन अरु धर्म को, कहो कहा संबंध ॥ ६८४ ॥

फूंकत जे गांजो अभखु भखि, भभूतिया भूत ।
लोलुप लंपट धूत ते, बने फिरत अवधूत ॥ ६८५ ॥

बहु गुन गन विज्ञान धन, बहु आध्यात्म विचार ।
करत अकेली दासता, सबकौ बंटाढार ॥ ६८६ ॥

वैधव्यानल जरहिं जहँ, प्रतिसत सोलह बाल ।
उद्धारै तेहि जाति कहँ, को माई को लाल ॥ ६८७ ॥

आप अनेकन हू किये, नहिं मानहि दुष्कर्म ।
होतै विधवा व्याह पै, जात रसातल धर्म ॥ ६८८ ॥

करो सदा चित चेत करि, उचित नारि सम्मान ।
सब प्रकार सम्पत्ति युत, होंगे सुखी महान ॥ ६८९ ॥

घरकी देवी तुष्ट तो, रमते देव सदैव ।
दूर न कर सकते कभी, सुख सम्पति को दैव ॥ ६९० ॥

भलैं सुधा सींचौ तहां, फलु न लागि है कोय ।
जहां बाल विधवान को, अश्रुपात नित होय ॥ ६९१ ॥

सुर तरु हूँ के फरन की, मति कीजौ उत आस ।
जाय बाल विधवा निकसि, जिततैं भरति उसांस ॥ ६९२ ॥

कलिजुग ही में मैं लखी, अति अचरज मय बात ।
होत पतित पावन पतित, छुवत पतित जब गात ॥ ६९३ ॥

एक धरहि घर मलिनता, अपर स्वच्छ करि जात ।
द्वै महँ कौन अछूत है ? नीके निर्णहु तात ॥ ६९४ ॥

नहिं उपजाये वे मुखन, नहिं जाये वे पांय ।
एकहि मग आये सबहि, एकहि मारग जांय ॥ ६९५ ॥

अपनावत अजहूं न जे, अपनहिं अंग अछूत ।
क्यों करि ह्वै हैं छूत वे, करि कारी करतूत ॥ ६९६ ॥

शूद्र बहुत जिस देश में, धरे क्षुद्रता भाव ।
वह बिनसाता सहज ही, निज अज्ञान प्रभाव ॥ ६९७ ॥

जब आता अभिमान अति, तुरत नसाता मान ।
रावण औ शिशुपाल सम, होवे यदपि महान ॥ ६९८ ॥

है जहँ आठ कनौजिया, नौ चूल्हे की रीति ।
तहां परस्पर प्रीति की, कहा पढ़ावत नीति ॥ ६९९ ॥

हूँ ठाड़े जा डार पै, काटत सोइ मतिमंद ।
घर घर भारत भाग तें, भरे भूरि जयचंद ॥ ७०० ॥

पर भाषा, पर भाव, पर भूषन, पर परिधान ।
पराधीन जन की अहै, यही पूर्ण पहिचान ॥ ७०१ ॥

निर्बल मिलकर परस्पर, वस्त्र बनाता सूत ।
मिलो परस्पर दौड़ कर, हर्षित भारत पूत ॥ ७०२ ॥

संघ शक्ति कलि में कही, विपति विदारन हार ।
पै क्यों अपनाते नहीं, संघ बद्ध सुविचार ॥ ७०३ ॥

प्रातः के बिछुड़े अहा, सांझहु आवै भौन ।
नीति वान, द्रष्टा सुधी, हम सब जगमें कौन ॥ ७०४ ॥

फुटकर—

सुख दाई सो देत दुख, देखु दिनन को फेर ।
शशि शीतल संयोग पैं, तपत बिरह की बेर ॥ ७०५ ॥

एक वस्तु गुन होत है, भिन्न प्रकृत के भाय ।
भटा एक कों पित्त करत, करत एक कों बाय ॥ ७०६ ॥

मारै इक रक्षा करै, एकहि कुल के दोय ।
ज्यों कृपान अरु कवच ये, एक लोह सों होय ॥ ७०७ ॥

अधिक दुखी लखि आपतें, दीजै दुख बिसराय ।
धरमराज को दुख हरो, मुनि नल बिपति बताय ॥ ७०८ ॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥ ७०९ ॥

बरसि बिश्व हर्षित करत, हरत ताप अघ प्यास ।
तुलसी दोष न जलद को, जो जलि मरै जवास ॥ ७१० ॥

जैसो गुन दीनों दई, तैसो नहीं निबन्ध ।
ए दोऊ कहँ पाइए, सोना और सुगंध ॥ ७११ ॥

होनहार सहजात सब, बिभव बीच नाहिं होत ।
गगन गिरह करिबौ करै, तुलसी पढ़त कपोत ॥ ७१२ ॥

जो गुड़ दीने ही मरै, जनि विप दीजै ताइ ।
जग जिति हारे परशुधर, हारि जिते रघुराइ ॥ ७१३ ॥

बनती देखि बनाइए, परन न दीजे खोट ।
जैसी चलै बयार तब, तैसी दीजै ओट ॥ ७१४ ॥

बिथा न मनकी खोलिये, वृथा हँसैं सब लोग ।
गुप्त मंत्रवत् राखिये, जासों होय न सोग ॥ ७१५ ॥

गूढ़ मंत्र गरुबे बिना, कोई राखि सकै न ।
धातु पात्र बिन और पै, बाघिन [illegible] रहै न ॥ ७१६ ॥

यति महंत व्यसननि फँसै, [illegible] त ।
कैसे ऐसे नरहि नर, स[illegible] त ॥ ७१७ ॥

ताकौ अरि कहा करि सकै, जाकौ जतन उपाय ।
जरै न ताती रेत सों, जाकी पनही पाय ॥ ७१८ ॥

मुद्रक—श्यामलाल भार्गव, श्याम प्रेस, मथुरा ।